सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

यह जीवन क्षण-भंगुर है!

मेरे प्यारे बच्चो !

यह' मानव-जीवन' जो तुम्हें मिला है, क्षण-भंगुर है। इसलिए सत्कर्मों के करने में ही इसका सदुपयोग करो। ऐसा न हो कि प्रमादवश अगत् की अस्थिर और अनित्य वस्तुओं के मोह और भोग-विलास में, ईर्षा, राग-द्वेष और पराई निन्दा में ही इसका अन्त हो जाय। इसलिए यह संकल्प लो कि इसी क्षण से अभ्युदय और निःश्रेयस की उपलब्धि के लिए— मुक्ति और समाधि के परमानन्द की प्राप्ति के लिए तुम प्रयास करोगे। इस सत्य-संकल्प की पूर्ति में प्रभुजी का करुणामय वरद हस्त सदैव तुम्हारे ऊपर रहेगा—प्रत्येक शुभ कार्य्य की प्रेरणा उसी परात्पर सत्ता से तुम्हें प्राप्त होती है और आगे भी होती रहेगी—जरूरत है सत्य संकल्पों का संबल लेकर सत्पथ पर आगे बढ़ने की।

—योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

टूंडला में जन्म-दिवस समारोह के यज्ञ मण्डप से दिया गया सन्देश।

वर्ष ३

नवम्बर १९६०

वार्षिक मूल्य १० रुपया

इस अंक का मूल्य १ रु०

अंक ८

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाँई ऐतमादपुर आगरा

श्री सिद्धगुरु प्रकाशन
सवांई-एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

इस अङ्क में:—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. कितना आश्चर्यकारी	.....	१
२. स्त्रियां और दीक्षा (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. योग-प्राप्ति का क्रम एवं उसका सरल उपाय	योगिराज श्री रामाचार्यजी 'हंस'	६
४. अपना गलत दृष्टि कोण ठीक कीजिए	डा. श्री बी. के. त्रिपाठी एम. डी, पो० अमोथ, जिला-आरा बिहार	१३
५. चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति का मार्ग	श्री रतनलालजी जैन	१६
६. कुण्डलनी की गति	ब्रह्मचारी श्री वृजेन्द्रसिंहजी	२६
७. सादर-अभिनन्दन	श्री राजपतिजी दुबे 'बालेन्दु'	२६
८. निजानुभूति	श्री नेमीचन्दजी शर्मा	३०
९. योगेश्वर चरित्र माला	श्री प्रभुजी की काश्मीर-यात्रा	३३
१०. बेचरी का प्रभाव	श्री होरालालजी शास्त्री फर्रुखाबाद	३५
११. लाडवा में योग-प्रचार		४४
१२. सचित्र योगासन व उनसे लाभ		४५
१३. टूण्डला में श्री सद्गुरुदेव का जन्म दिवस-समारोह		४८
१४. श्री गुरुदेवजी का आगामी योग-प्रचार कार्यक्रम		५५
१५. पवित्र-चिन्तन	टाइटिल	४

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष ३ | अङ्क ८ | नवम्बर १९७०

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्'
मर्त्यो मृत्योर्मुक्त विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्वान् बहुविधदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

कितना आश्चर्यकारी !

चला विभूतिः क्षणभंगि यौवनं
कृतान्तदन्तान्तरवर्ति जीवितम्।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम् ॥

ऐश्वर्य चंचल है, यौवन क्षणिक है, मनुष्य जीवन यम के दांतों के मध्य में है, फिर भी मनुष्य मात्र परलोक प्राप्ति के साधन में उपेक्षा करता चला जा रहा है, अहो मनुष्यों का यह व्यापार कितना आश्चर्यकारी है।

स्त्रियां और दीक्षा

हमारा विशेष लेख :—

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत आजकल के नारी-जागरण युग में विचार प्रकट करना कुछ विशेष आश्चर्य और कौतूहल की बात नहीं, किन्तु अब से सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व एक ऐसा भी समय था जब यहाँ 'स्त्री शूद्रोनाधीयताम्' जैसे रूढ़िवादी नारों का प्रचार था और तब लड़कियों का पढ़ाना लिखाना या उन्हें सुशिक्षित बनाना आश्चर्य एवं मां-बाप के कर्त्तव्य से बाहर की बात समझी जाती थी। स्त्री-शिक्षा के आन्दोलन का मुख्य श्रेय इधर आर्य्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती को देना उचित होगा। आर्य्यसमाज ने जगह-जगह कन्या गुरुकुल और कन्या पाठशालायें खोलकर स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में जो नव जागरण किया वह निस्संदेह एक महत्त्वपूर्ण कार्य्य ही था, महर्षि दयानंदने शिक्षा और शास्त्रीय अध्ययन के लिए गुरुकुलों की स्थापना पर बल दिया और बतलाया कि कन्याओं और बालकों के गुरुकुल अलग-अलग होने चाहिये। इन दोनों के स्थानों में कम से कम ६ या ८ मील का अन्तर होना चाहिए। उन्होंने यह भी नियम रखा कि कन्याओं के गुरुकुलों अथवा शालाओं में अध्यापिकायें केवल नारी ही रहें और जो अन्य कर्मचारी रखे जावें वे भी स्त्रियों में से ही हों। महर्षि ने आर्य्य ग्रन्थों के पठन-पाठन की जो प्रणाली निर्धारित की वह भी उपयोगी आकर्षक और आदर्श थी। जो कोई भी इस आदर्श शिक्षा-प्रणाली को अपना कर इन गुरुकुलों में पढ़ने का अवसर पा सकेगा उसका उद्भट विद्वान चरित्रवान और मेधावी व पुरुषार्थी होना एवं योग सिद्धान्तों के अनुसार परिपूर्ण होना बिल्कुल निश्चित ही होगा। लड़कियां भी जो इनमें पढ़ेंगी विदुषी चरित्रवती और पातिव्रत धर्म की पालन करनेवाली होंगी। यही विचार महर्षि का था जिसकी कुछ पूर्ति इन गुरुकुलों से अवश्य हुई है। 'स्त्री शूद्रो ना धीयताम्' का विचार दूर हो गया अवश्य है, लेकिन इसके साथ ही यह भी हुआ कि स्त्रियों अथवा बालिकाओं को बालकों के समान ही अच्छी ऊँची शिक्षा देने की इच्छा बलवती हुई वहाँ लोग यह भूल गये कि शिक्षा-विधि कैसी होनी चाहिए। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

रूप दयानंद के निर्देशित ढंग पर चल-चली पर अंग्रेजी ढंग की सह-शिक्षा ने उसे एक सीमित से स्थान में समेट कर रख दिया, जगह-जगह एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल, इण्टर-कालेज और कालेजों की धूम मच गई। लड़के लड़की सभी चाहे वे कोई भी हों इनमें वे रोक टोक पढ़ने लगे। प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर मैट्रिक तक तो बालक-बालिकाओं की पाठ-शालायें अलग-अलग रहीं किन्तु जैसे ही १६-१७ वर्ष की आयु हुई कि उन्हें कालेजों में सह शिक्षा का सामना करना पड़ा। इस सह-शिक्षा के जो दुष्परिणाम होने थे वे भी उभर कर सामने आये। प्राचीन नारी मर्यादा और शील-सदाचार के बन्धनों को गहरी चोट पहुंची, फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्त्री-शिक्षा पुरुष-शिक्षा के समान व्यापक हुई और प्रत्येक क्षेत्र में सुयोग्य सुशि-क्षित विदुषी महिलायें निकल कर आगे आईं वे वकील, बैरिस्टर, जज़, न्यायाधीश और शासनाधीश, डाक्टर, इंजीनियर आदि भी बनीं। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जिसमें वे पुरुषों की स्पर्धा करनेसे पीछे रही हों। हमें यह जान कर आश्चर्य और दुःख भी होता है कि नारी जाति की इस जागरण वेला में जब कि जाग-रण समानाधिकार प्राप्ति के नाम पर वह सभी धार्मिक मान्यताओं को चकनाचूर करके आगे बढ़ने को उतावली है कुछ रूढ़िवादी लोग इसी सिद्धान्त के पक्षपाती हैं कि स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा नहीं होनी चाहिए। हमारी शिक्षा प्रणाली आर्ष प्राचीन हो उसमें धार्मि-कता को विशेष महत्व दिया जाय इसके हम पक्षपाती हैं लेकिन जब तक यह न हो तब तक स्त्रियों को शिक्षा व दीक्षा ग्रहण करने से रोका जाय इसके कतई समर्थक नहीं। हम यहाँ सिद्धान्त रीति से इस बात को समझा देना चाहते हैं कि शिक्षा और दीक्षा के क्षेत्र में गुरु शब्द का क्या अर्थ है? और दीक्षा शब्द का क्या मतलब है? स्त्रियों को दीक्षा क्यों नहीं होनी चाहिए। इस प्रश्न के उत्तर में हम जानना चाहेंगी कि स्त्रियों के स्वरूप में छिपा हुआ उनका आत्मा क्या परमात्मा नहीं है?

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है :—

ममैवांसो जीवलोके जीव भूतः सनातनः।

अर्थात् जीव-भूत यह मेरा सनातन अंश है। क्या यहां पर 'जीव' शब्द का प्रयोग पुरुषों के शरीर में अभिव्यक्त होने वाले आत्म-तत्व के ही लिए है या आत्मत्वेन स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि की सत्ता तक उनका अपना अंश है। यदि आत्मत्वेन पुरुष और स्त्रियों का आत्मा एक ही वस्तु है तो उनके परम श्रेय प्राप्ति के लिए एक को अधिकार है और दूसरे को कोई अधिकार नहीं, यह बात कहां तक न्याय संगत है? गुरु शब्द के अर्थ दो प्रकार के हैं। एक तो गुरु वह कहलाता है जो शब्दों का श्रवण करता है।

शृणाति शब्दादीनुपदिशति यः स गुरु।

अर्थात् जो शब्दादियों का उपदेश करते हैं, सत् शिक्षा देते हैं वह सब-के-सब गुरु हैं। दूसरे गुरु शब्द की जो पुराणों में विवेचना

की है वह इस प्रकार है :—

गुकारस्त्वन्धकारः स्यात्
रुकारस्तेजोच्यते।
अन्धकार निरोधित्वात्
गुरु रित्यभिधीयते॥

अर्थात् 'गु' नाम अन्धकार का है। 'रु' नाम तेज का है। अन्धकार निरोधन शक्ति जिसमें हो वही प्रकाशस्वरूप आत्मा गुरु है। जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है वही दूसरों को प्रकाश दे सकता है। और जो स्वयं ही अन्धकारमय है वह दूसरों को क्या प्रकाश देगा। इसलिए परम प्रकाश स्वरूप वही अव्यक्त सत्ता है। जिसके लिए शास्त्रों ने गद-गद कंठ से पुकार कर यह कह दिया है :—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं।
नेना विद्युतो भान्ति कुतोयमग्नि॥
तमेव भान्त मनुभाति सर्वं।
तस्य भासा सर्व मिदं विभाति॥

अर्थात् वहाँ पर न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा तारे ही कोई प्रकाश करते हैं। बिचारे अग्निदेव का तो कहना ही क्या है। ऐसी वह अव्यक्त सत्ता ही गुरु पद वाच्य है। योग-दर्शन में जहाँ पर भगवान पतंजलि ने योग की परिभाषा लिखी वहाँ पर श्री व्यासदेव ने बिलकुल स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

यत्रा वच्छेदनार्थेन
कालो नोपावर्तते स गुरु।

अर्थात् जिसकी सत्ता काल की सीमा से परे है वही सद् गुरु सत्ता है। उसी सत्ता का वर्णन करते हुए उपनिषद कहते हैं कि :—

भयादस्याग्निस्तपति
भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च
मृत्युर्धावति पंचमः॥

अर्थात् उसके भय से अग्नि तपती है, उसके भय से सूर्य तपता है, इन्द्र और वायु अपने कार्य में लगे रहते हैं और मृत्युदेव दौड़ा-दौड़ा फिरता है। यही वह परमतत्व है जिसके लिए हमारे शास्त्रों ने कहा है :—

नास्ति तत्वं गुरोपरम्

रही दूसरी बात यह कि यह सत्ता किन शरीरों का अधिष्ठान लेकर अपना काम करती है यह तो निश्चित सिद्धान्त की बात हो गई कि जहाँ से वह प्रकाश मिलता है वह नित्य चेतन सदा-सर्वदा सभी का वन्द्य है चाहे कोई स्त्री हो या पुरुष हो यह कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

रहा 'दीक्षा' शब्द का अर्थ 'दीक्षा' शब्द में 'दीयते' और 'क्षीयते' दो क्रियाओं का प्रयोग होता है। दीक्षा शब्द का अर्थ बनता है :—

दीयते ज्ञानं क्षीयते तदावर्णं च

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान का प्रकाश दिया जाये और उसके ज्ञान की रुकावटें खत्म कर दी जांये वही 'दीक्षा शब्देनाभिव्यक्त' है। वस्तुतः विचार करके देखा जाये तो दीयते और क्षीयते का प्रयोग संसार में प्रतिक्षण चलता रहता है। कोई क्षण इस प्रकार का नहीं जिसमें दीयते और क्षीयते

इन दो क्रियाओं का प्रयोग न हो। हमारे शास्त्र का कथन है कि :—

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषो वेद

अर्थात् माता वाला, पिता वाला और आचार्य वाला परमात्मा को जान पाता है। जो साधक मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान् नहीं है वस्तुतः उसको पुरुष बोध नहीं हो सकता। जिस समय व्यक्ति मातृवान् बनता है तब से ही मनुष्य के लिए 'दीयते' और 'क्षीयते' दोनों क्रियाओं का आरम्भ हो जाता है। माता अपने बच्चे को सत्शिक्षा देती है 'दीयते' क्रिया का प्रयोग हो गया। उसके अन्दर के दुर्गुणों को हटाती है - यहाँ पर 'क्षीयते' क्रिया का प्रयोग हो गया। एक प्रकार से यहाँ से ही 'दीक्षा' का कार्य प्रारंभ हो गया। इसी प्रकार से पिता अपने बच्चे को सत् शिक्षा देता है, दुराचारों से बचाता है उसके अन्दर से दुर्गुणों का क्षय करता है। यहाँ पर भी दीक्षा तत्त्व बराबर चल रहा इसी कारण आचार्य लोग अपने ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य व्रत पालन की शिक्षा देते हैं। ये भी उनका 'दीयते' और 'क्षीयते' की क्रियाओं का प्रयोग ही है। इस प्रकार संसार में रहने वाला प्राणी दीक्षा तत्त्व से बच नहीं सकता। चाहे वह पुरुष या स्त्री हो, लड़का या लड़की हो, सभी इस दीक्षा तत्त्व के अधिकारी हैं और सबको दीक्षायें प्राप्त होती रहती हैं रही उस दीक्षा की बात जिसको सामर्थ्यवान् गुरु दिया करते हैं। उसमें उनका संकल्प प्रमुख कारण रहा करता है। इसमें कुछ दीक्षायें तो ऐसी होती हैं, जैसे गुरुदेव ने मन में संकल्प किया, वैसा ही शिष्य के मन में स्फुरण हो गया। इसका नाम संकल्प दीक्षा है। गुरुदेव ने अपनी आंखों से देखकर शक्तिपात किया इसका नाम दृग दीक्षा होता है। मन ही मन में जिसके लिए संकल्प किया वह मानस दीक्षा कहलाती है। ये सभी प्रकार की दीक्षायें स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़की सभी के लिए बराबर होती रहा करती हैं। किसी प्रकार से जब एक सामर्थ्यवान् गुरु संसार में अपने शक्तिपात के द्वारा लोक हित करता है तो क्या वह पुरुष समाज के ही लिए है, स्त्रियों के लिए नहीं ? इन सभी युक्तियों से यह पूर्ण रूपेण सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रकार पुरुषों को सत् शिक्षा का अधिकार है उसी प्रकार से स्त्रियों को भी बराबर है। रही बात व्यभिचारादि की यह नियम सर्वत्र सामान्य रूप से लागू है। इसमें मनुष्य का पतन है। चाहे किसी साधारण से हो या असाधारण से यह कोई आवश्यक नहीं कि दीक्षा देनेवाले गुरुओं में ही यह दोष मिले बाकी सब संसार दोषरहित हो। प्राचीन इतिहास में इस प्रकार की बहुत सी कथायें हैं जिनसे पूर्ण रूपेण प्रमाणित होता है कि किसी सामर्थ्यवान् गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर उनका सीमातीत उत्थान हुआ है। यहाँ तक कि उस तेज के हृदय में रह जाने के बाद पाणिग्रहण कर्ता उसका पति भी उसको अपने सहवास में नहीं ले सका उससे कि उसने भी स्वयं दीक्षा प्राप्त न कर ली और अपना भी उतना ही तेज न बढ़ा लिया। स्कन्धपुराण के अन्तर्गत आया हुआ काशीराज की एक कन्या का उदाहरण

यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है। पर इस के वर्णन से पहले मनुष्य को मंत्र सिद्धि के लिए क्या करना चाहिए यह समझाने के लिए पांच श्लोक उद्धृत कर रहे हैं जो इस प्रकार हैं :—

अतः सद्गुरु माश्रित्य
प्राप्नोऽयं मंत्र नायकः।
पुण्य क्षेत्रेषु जप्तव्यः
सद्यः सिद्धि प्रयच्छति॥
गुरवो निर्मलाः शांताः
साधवो मितभाषिणः।
काम क्रोध विनिर्मुक्ताः
सदाचारा जितेन्द्रियाः॥
एतैः कारुण्यतो दत्तो
मंत्रः क्षिप्रं प्रसिद्धयति।
क्षेत्राणि जप योग्यानि
समासात्कथयाम्यहम्॥
प्रयागं पुष्करं रम्यं
केदारं सेतुबन्धनम्।
गोकर्णं नैमिषारण्यं
सद्यः सिद्धि करं नृणाम्॥

ऊपर से पंचाक्षरी महिमा का वर्णन चला आता है उसी के संकेत को लेकर कहा गया है कि सद्गुरु का आश्रय लेकर ही इस मंत्र को प्राप्त कर लेना चाहिए। पुण्य क्षेत्रों में जपने से यह मंत्र शीघ्र सिद्धि का दाता है। गुरु लोग निर्मल स्वभाव के शान्त साधु, मितभाषी काम, क्रोध रहित, सदा चार संपन्न एवं जितेन्द्रिय होते हैं। करुणा पूर्वक जब यह लोग मंत्र को प्रदान करें तो शीघ्र सिद्धि का दाता होता है इस मंत्र के अपने योग्य जो क्षेत्र हैं उनका नाम संकेत पूर्वक मैं तुमसे कहता हूँ। वह इस प्रकार हैं। 'प्रयाग, पुष्कर, रम्यक्षेत्र केदारनाथ, सेतुबन्ध रामेश्वर, गोकर्ण, नैमिषारण्य, इन सब तीर्थों में जप करने पर यह सद्यः सिद्धिप्रद है।

अत्रानुवर्ण्यते सद्भि-
रितिहास पुरातन्।
अहकृद्वा सकृद्वाऽपि
शृण्वतां मंगल प्रदः॥

इस विषय में श्रेष्ठ पुरुषों ने पुराने जमाने का एक इतिहास कहा है। उसका एक बार या अनेक बार सुनने से यह मंगल का दाता है। वह इस प्रकार है :—

मथुरायां यदुश्रेष्ठो,
दाशार्हे इति विश्रुतः।
बभूव राजा मतिमान्,
महोत्साहो महाबलः॥
शास्त्रज्ञो नयवाञ्छूरो,
धैर्यवान् मितयुतिः।
अप्रधृष्यः सुगंभीरः,
संग्रामेष्वनिवर्तितः॥
महारथो महेश्वासो,
नाना शास्त्रार्थ कोविदः।
दाताऽन्यो रूप संपन्नो
युवा लक्षण संयुतः॥
स काशिराज तनया,
मुपयेमे वरानना।

कान्तां कलावतीं नाम,
रूप शील गुणान्विताम् ॥

मथुरा नगरी में दशार्ह नाम का एक विख्यात राजा था, वह बड़ा भारी बुद्धिमान्, उत्साही, महा बलवान्, शास्त्र का ज्ञाता, नीतिवान्, शूरवीर, धैर्यवान्, बड़े भारी प्रभाव वाला, अजेय, गम्भीर, संग्राम में पीठ न देनेवाला, नाना शास्त्रों का पारगत, महारथी, धनुषधारी, वक्ता, रूप यौवन सम्पन्न, युवावस्था के लक्षणों से युक्त था। समय आने पर रूप यौवन सम्पन्ना काशिराज की पुत्री कलावती नाम की कन्या से उसने विवाह किया।

कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः
संप्राप्य निज मंदिरम् ।
रात्रौ तां शयनारूढां
संगमाय समाह्वयत् ॥
सा स्वभर्ता समाहूता
बहुशः प्रार्थिता सती ।
न बबन्ध तस्मिन्न
चागच्छत्तदन्तिकम् ॥
संगमाय यदाहूता
नागता निज वल्लभा ।
बलादाहर्तुकामस्ता-
मुदति तिष्ठन्महीपति ॥

राज्ञ्युवाच

मा मां स्पृश महाराज
कारण ह्यां ऋते स्थिताम् ।
धर्मा धर्मौ विजानासि
माकार्षीः साहसं मयि ॥
इत्युक्तोऽपि तया साध्व्या
स राजा स्मरविह्वलः ।
बलादाकृष्य तां हस्ते
परिरेभे रिरंसया ॥
तां स्पृष्ट मात्रां सहसा
तप्तायः पिण्डसन्निभाम् ।
निर्दहन्तीं निजात्मानं
तत्याज भय विह्वलः ॥

इसका आशय यह है कि—विवाह के उपरान्त मथुरापति वह राजा अपनी पत्नी को अपने घर ले आया और रात्रि के समय उपभोग की कामना की किन्तु उस परम सती ने अपने पति को तत्काल मना कर दिया और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि महाराज! आप मेरा स्पर्श न करें। मैं इस रहस्य को जानती हूं किन्तु कामातुर राजा ने अपनी प्रिया पत्नी को बलपूर्वक आलिंगन करना चाहा तो उसका शरीर तपे हुए जलते लोहे के समान अत्यन्त तप्त लगा। उस राजा को यह मालूम हुआ कि यह थोड़ी देर में मुझे जला देगी। इसी भय से भयान्वित होकर उस राजा ने छोड़ दिया और विनम्रतापूर्वक बोला :—

राजोवाच

अहो सुमहदाश्चर्य-
मिदं दृष्टं तवप्रिये ।
कथमग्नि समं जातं
वपुः पल्लव कोमलम् ॥

इत्थं सुविस्मितो राजा
भीतः सा राजवल्लभा ।
प्रत्युवाच विहस्यैनं
विनयेन शुचिस्मिता ॥

मुझे बड़ा आश्चर्य है कि पल्लव कोमल तेरा शरीर अग्नि के समान कैसे जल रहा है ? राजा के इस प्रकार पूछने पर रानी प्रेमपूर्वक हँसकर विनयपूर्वक बोली कि—

राजन्मम पुरा वाल्ये
दुर्वासा मुनिपुंगवः ।
शैवी पंचाक्षरीं विद्यां
कारुण्ये नोपदिष्टवान् ॥
तेन मंत्रानुभावेन
ममांगं कलुषोज्झितम् ।
स्प्रष्टुं ना शक्यते पुंभिः-
स पापैर्देव वर्जितैः ॥
त्वया राजन्प्रकृतिना
कुलटा गणिकादयः ।
मदिरा स्वाद निरता
निषेव्यन्ते सदा स्त्रियः ॥
न स्नानं क्रियते नित्यं
न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।
नाराध्यते त्वयेशानः
कथं मां स्प्रष्टुमर्हसि ॥

अर्थात् हे राजन् ! बाल्यकाल में मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि ने करुणा करके मुझे शैवी पंचाक्षरी विद्या का उपदेश किया था। उस पंचाक्षरी के जाप से मेरा शरीर बिल्कुल पाप रहित हो गया है। इसलिए देववंदित पापी पुरुषों से स्पर्श नहीं किया जा सकता। और हे राजन् ! तुमने स्वभाव से ही कुलटा स्त्रियों, गणिकादि का सेवन किया है, मदिरा आदि निषिद्ध पदार्थों का सेवन किया है और न तुम स्नान करते हो, न मन्त्र-जप करते हो, न शिवार्चन करते हो, ऐसी हालत में आप मुझे कैसे स्पर्श कर सकते हैं। अपनी रानी की ऐसी बात सुनकर उस राजा ने कहा—यदि ऐसी बात है तो तुम मुझे पंचाक्षरी विद्या का उपदेश दे दो जिससे मैं पाप-मुक्त होकर तेरे स्पर्श योग्य बन जाऊँ। रानी ने उत्तर दिया—महाराज ! आप मेरे पति होने के नाते मेरे गुरु हैं। मैं आप को उपदेश कैसे दे सकती हूं अतः आप मन्त्र-वेत्ता गर्गजी के पास चलिए। वह ऋषि गर्गजी आपको पंचाक्षरी विद्या का उपदेश करेंगे। उसके जपने से आप अवश्य पाप निर्मुक्त हो जायेंगे। रानी के इस प्रकार समझाने पर वह राजा अपनी पत्नी को साथ लेकर गर्ग मुनि के आश्रम पर गया और साष्टांग दण्डवत् करके विनयपूर्वक इस प्रकार बोला :—

शैवी पंचाक्षरी विद्या-
मुपदेष्टुं त्वमर्हसि ।
अनाज्ञातं यदाज्ञातं
यत्कृतं राज कर्मणा ॥
तत्पापं येन शुद्धयेत
तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ।
एवमभ्यर्थितो राज्ञा
गर्गो ब्राह्मण पुंगवः ॥

(शेष पृष्ठ ४१ पर पढ़िये)

योग-प्राप्ति का क्रम एवं उसका सरल उपाय

[योगिराज श्री रामाचार्यजी 'हंस']

यह सत्, चित्, आनन्दरूप जीव आत्मा अनन्त शक्तियों का भंडार है। जो अपने पिता प्रभु के उद्यान में आनन्द लेने वाला है और अज्ञानवश माया के बन्धनों में बंध जाता है। ठोकरें खाता है। निज स्वरूप से विस्मृत हो जाता है। अपने लक्ष्य के कार्य-क्रम को भूल जाता है। अतः दुःखद अवस्था में आ पड़ता है। इसी भूल का नाम ही माया है। बन्धन है। जड़ता है। अज्ञता है। आत्मा स्वच्छ निर्मल दर्पण तुल्य है। जिस पर माया मोह का मैल जम जाने के कारण मलिनता छा जाता है। आत्मा अंगार सदृश प्रकाशवान है। उस पर राख की परत चढ़ जाती है। उस राख को हटाते ही वह पुनः प्रकाशित हो उठता है। मल युक्त दर्पण को रगड़ आदि से साफ करने से पुनः उज्ज्वल किया जा सकता है। अज्ञानान्धकार के नष्ट होते ही ज्ञान का प्रदीप जल उठता है। तब अज्ञान अन्धकार के विनष्ट होते ही सब कुछ दिखने लगता है। यह महान कार्य केवल गायत्री ही कर देती है जो कि आत्मा पर चिपटे हुए मलों, विक्षेपों, कल्मषों को तथा जन्म-जन्मान्तर के कुसंस्कारों को शीघ्र ही स्वच्छ कर देती है। मायापाश को आत्मा अपनी निर्मल स्थिति को पाकर समस्त त्रासों से छूट जाता है। आत्मा की निर्मलता ही तो परमात्मा की प्राप्ति है।

ब्रह्म-निर्वाण, जीवन्मुक्ति, परमपद, आत्म-साक्षात्कार ईश दर्शनादि सब इसी के ही नाम है। आध्यात्मिक उन्नति में जैसे-जैसे साधक आगे बढ़ता है तैसे ही उसे देह में लुप्त अव्यक्त ब्रह्माण्ड गत ईश्वरीय महान शक्तियों का भास होने लगता है।

यह स्थूल देह अन्नमय कोश कहलाता है। इसी के भीतर चार सूक्ष्म अदृश्य देह हैं। मृत्यु काल के समय यही अन्नमय देह नष्ट हो जाता है। अन्य अदृश्य चारों ही सूक्ष्म देह विद्यमान रहते हैं। जिन्हें प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय देह कहते हैं। इनके अन्दर वासनायें, इच्छायें, भावनायें, आदतें आदि भरी रहती हैं। एवं जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार भी जैसे स्थूल देह के रहते हुए मृत्यु हो गई नहीं कह सकते। उसी प्रकार अन्दर के चारों देह जब तक जीवित रहते हैं तब तक मुक्ति भी नहीं कही जा सकती। इन पांचों कोषों के आवरण तथा आच्छादनों से मुक्त होने के लिए पंचमुखी गायत्री की साधना धर्म शास्त्र, वेदादि बताते हैं। पंचमुखी दशहस्ता दसों दिशाओं में व्याप्त है। एवं दसों इन्द्रियों की स्वामिनी दस महा

शक्तियों की अधीश्वरी है। पंच मुखी दश-भुजी महा शक्तियों के सहयोग से हम अपने पांचों बन्धनों से तथा पांचों शरीरों से निर्मुक्त हो सकते है। दशों इन्द्रियों पर अधिकार पा सकते हैं। दशों दिशाओं पर अपना अस्तित्व फैला सकते हैं। दस महा शक्तियों के स्वामी बन सकते हैं। गायत्री माँ की कृपा से हम क्या नहीं कर सकते? लोक-परलोकके ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हैं। भली प्रकार इन पंच कोशों के स्तर का अतिक्रमण कर सकते हैं, जिनमें अलौकिक दिव्य शक्तियों के खजाने भरे पड़े हैं। ये कोष ऋद्धि सिद्धियों के भण्डार हैं। इन्हें पा लेने पर बाकी कुछ भी नहीं रह जाता सर्वं प्राप्तमिति।

अन्नमय कोष पर विजय पाने के लिए उपवास, आसन सिद्धि, भूत सिद्धि, तपश्चर्या योगाभ्यास आदि मुख्य हैं। जब इस प्रथम कोष को विजय करने के लिए साधनायें चलती हैं तब ग्रन्थिका, दीपिका, मोचिका, पूषा, अव्यापिनी, चन्द्रिका कुमार्चिरमाया, अमिता आदि ६६ उपत्यकाओं का परिशोध होता है। (इन्हीं ६६ चक्रों का यज्ञोपवीत निर्माण में प्रयोग होता है) जिससे नाना प्रकार के मलों का निराकरण होकर शरीर की षट् अग्नियां (उष्मा, बहुवच्च, हृादि, रोहिता आपता तथा व्याप्ति) जागृत हो जाती है। उत्तरायण दक्षिणायन की सोलार्थ स्थिति का चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं का नक्षत्रों द्वारा पृथ्वी पर होने वाले प्रभाव का सूर्य की अंश किरणों का यह शरीर लाभ उठाने लगता है। उपवास पांच प्रकार के होते है-पाचक, शोधक, शामक, आवक, पावक अपना-अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं तब साधक का सिद्धासन पद्मासन मयूरासन, हलासन उत्कटासनों पर अधिकार हो जाता है। और चारो वाणियां वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पादन करने लग जाती है। तप का मार्ग सरल एवं प्रशस्त होने लग जाता है। आस्वाद, तितीक्षाकर्षण, कलत्र प्रदातव्य, निष्कासन, ब्रह्मचर्य, अर्जन आदि की कठिनता ध्वस्त हो जाती है। नेति, धौति, बस्ति, वाटक, कपाल, भातिषट् कर्मों की आवश्यकता स्वतः ही गायत्री से पूर्ण हो जाती है शरीर में जो आश्चर्यमयी शक्तियां तथा सिद्धियां भरी पड़ी हैं वह जागृत होकर विकसित होने लगती हैं यह सब अन्नमय कोष की साधना से होने लगता है।

प्राणमय कोष (२)

वास्तव में कुण्डलिनी—गायत्री, महोजा-दिव्य कला-आदि प्रयायवाची सब शब्द हैं। प्राणमय कोष का परिमार्जन होते ही प्राण-शक्ति की अजस्रधारा प्रस्फुटित होकर दिव्यालोक से साधक को भर देती है। पांच प्राण-अपान, समान, उदान, व्यान एवं पञ्च उपप्राण नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, विद्युत प्रवाह से ओत-प्रोत हो जाते हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों से रहता है। नाड़ी मण्डल सूक्ष्म हो जाने के कारण विद्युत धारा प्रवाह बहने लगता

है। प्राणतत्व वेत्ता इस प्राणमय कोष को जागृत कर शक्ति का पुञ्ज ही बन जाता है। मूलबन्ध, उड्डियान, एवं जालन्धर बन्ध द्वारा श्वास तथा नाड़ि मण्डल पर सम्यक् अधिकार प्राप्त हो जाता है। विपरीत करणी, खेचरी, महामुद्रा एवं शांभवी अगोचरी, भूचरी आदि मुद्राओं द्वारा मन शीघ्र ही शान्त हो जाता है। तब साधक मननशील बनकर मुनि पदवी पाता है। १—लोम विलोम, प्राणायाम, २—उज्जाई, ३—शीतली, ४—शीतकारी, ५—भास्त्रिका, ६—भ्रामरी ७—मूर्च्छा ८—पल्लविनी प्राणायाम अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन करते हैं। इनके द्वारा मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

मनोमय कोष (३)

जब इस तृतीय कोष पर अभ्यासों को अधिकार प्राप्त हो जाता है तब उसमें विविध विशेषतायें जागृत होने लगती हैं। हिप्नोटिज्म, मैस्मेरेज्म, मैन्टलम्रेपी, आदि पर योगपीय योगी बड़ा अभिमान करते हैं। वास्तव में यह मनोमय कोष के साधारण से खेल हैं। ध्यानयोग की पांच श्रेणियां स्थिति, संस्थिति, विगति, प्रगति, प्रसंस्थित इष्टदेव से सम्भाषण युक्त साक्षात्कार कराने में समर्थ होती है। त्राटक द्वारा पत्थर को भी भेदन कर देनेवाली दृष्टि उत्पन्न होती है।

शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, पांच तत्वों सहित पांच तन्मात्राओं पर अधिकार हो जाता है। जिससे सूक्ष्म जगत जो अदृश्य था वह दृश्यमान हो जाता है। ऐसी स्थिति को प्राप्त साधक ही दूसरे के मनोगत भावों को तुरन्त जान लेता है तब वह कीट-पक्षी तक के मनोगत विचारों को जान जाता है। तब ही उसे योगी के नाम से पुकारा जाता है।

विज्ञानमय कोष (४)

जब साधक इस कोष को गायत्री (कुण्डलिनी) द्वारा उल्लंघन करता है तब उसे आत्मा के दिव्य प्रकाश का अनुभव होने लगता है। तब उसे गायत्री के अजपा जाप सोऽहं मन्त्र का विशेष विकास होकर मन्त्र स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। तब अन्तस विकसित होकर आत्म-चिन्तन एवं आत्म-अनुभव, आत्म-दर्शन को प्राप्त कर आनन्द के सागर में निमग्न हो जाता है। सहसा झटिति एक शब्द के साथ वज्र कपाट खुल जाता है और साधक अपार आनन्द में खो जाता है। तब स्वतः ही स्वर योग की सिद्धि प्राप्त होती है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्ति, जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शंखनी—दशों नाड़ियें क्रियाशील हो जाती हैं। तब साधक की पहुंच लोक-लोकान्तरों तक हो जाती है। ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रुद्र—ग्रन्थियें खुल जाती हैं। अतः इनके खुल जाने से रज, सत्, तम तीनों गुणों पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। साधक जब तक तीनों गुणों के भीतर रहता है तब तक उसका आना-

गमन का चक्कर नहीं टूटता। अतः गीता में 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' कहा है।

आनन्दमय कोष (५)

इस कोष की साधना अन्तिम साधना है। जब साधक का आनन्दमय कोष जागृत हो जाता है तब ही २७ प्रकार की समाधियों का अनुभव साधक को होता है। तब अभ्यासी को शब्दब्रह्म साक्षात्कार होता है। शास्त्रों में कहा भी है—शब्द (नाद) ब्रह्म है। सन्त गर्वेया-आदि को अनहद ध्वनि द्वारा दैवी सन्देश सुनाई पड़ते हैं। 'बिन्दु शून्य' की साधना द्वारा ऋणात्मक एवं धनात्मक कणों की गति विधि पर नियन्त्रण करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। व्याप्ति तथा व्याप्ति कलाओं पर अभ्यास द्वारा नियन्त्रण हो जाने पर ओजस् तथा रेतस् तत्त्वों पर अधिकार हो जाता है। साधक को स्वतः ही सर्व सिद्धियें हस्तगत हो जाती हैं और जब जहाँ चाहता है वहीं पर अपनी सामर्थ्य से पहुँच जाता है अतः वहीं से ही साधकों के विघ्नों का नाश करता है तथा शांत भाव से अवस्थित रहता है।

सत्-चित् आनन्दका अनुभव जो कि तुरीयावस्था में हुआ करता है इसके विषय में तैत्तिरेयोपनिषद् में कहा गया है कि पूर्ण स्वस्थ, पूर्ण गुणवान्, सम्यक् सामर्थ्यवान्, सौभाग्यवान् तथा सम्पूर्ण संसार का अधिपति होने पर जो सुख उसमें सृष्टा को होता है उसके आनन्द को एक मानुषी आनन्द कहेंगे। ऐसे करोड़ों आनन्दों को तुरीयावस्था का ब्रह्मानन्द कहेंगे। इस परम सुख का आस्वादनकर मनुष्य कृत-कृत्य होजाता है यही है उस आनन्दमय कोष का परमसुख। इन पांचों कोषों का उल्लंघन करना ही मानव तन की सार्थकता है। संलग्न साधक जब गुरु कृपा से इनके स्तर को पार करता है उस यात्रा के काल में प्राप्त होने वाले सुखों को तथा अनन्त विलक्षण चमत्कारों को प्रत्यक्ष करने का एकमात्र मार्ग योगि गुरु द्वारा ही प्राप्त हुआ करता है। कष्ट साध्य दीर्घ मार्ग भी गुरु प्रदर्शित सामयी साधना द्वारा सरल हो जाता है। पांचों बन्धनोंसे मुक्त होकर परमलक्ष्य को प्राप्त करने का यही मात्र एक मार्ग है। जो अविलम्ब लक्ष्य स्थान तक निर्विघ्न पहुंचता है। विधिवत् जो साधक वेदोक्त गायत्री का ब्रह्म निर्वाण प्राप्ति के लिए २४ लाख जप करके स्वतः अजपा पर आ जाता है वही साधक इन पांचों शरीरों का उत्क्रमण करता हुआ पूर्ण ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। तब उसे सोऽहं भी उलट कर हंसः पद पर आरूढ़ कर देता है। उपनिषद् में लिखा है—'हंसः गणेश विधिरेव हंसः हंस हरिर्हं समस्तचक्राभ्यु हंसोऽहं जीव परमात्म हंसः हंसोऽयं आत्मा गुरुदेव हंसः।' हंस नाम आत्मा का है और यही महामन्त्र है :—

हंकारेण बहिर्याति
सः कारेण विशेत्पुनः,
ब्रह्म बीज महा मन्त्रः
जीवो जपति नित्यशः।

—×•×—

अपना गलत दृष्टि कोण ठीक कीजिये

[डा. श्री वी.के. त्रिपाठी, एन.डी.]
पो०-अमाँव, बाया-हाटा
जिला-आरा (बिहार)

यह कितने शर्म की बात है कि इस वैज्ञानिक युग में भी अच्छे बुरे तत्त्वहीन जिस किसी भी सिद्धान्त का कतिपय लोग समर्थन करते हों उस पर गम्भीरता से विचार किये बिना ही हम उसे सत्य रूप में स्वीकार कर लेते हैं। मनुष्य अपने सुख-शान्ति के उद्देश्य से ही विभिन्न साधन एवं शक्तियों का संचय करता है। अपने को अस्वस्थ एवं दुखी बनाकर साधन इकट्ठा करना कदापि उसका लक्ष्य नहीं हो सकता।

संसार में जितने भी सुख के साधन हैं उन सभी का ही उद्देश्य शरीर को निरोग एवं सुखी रखना है। धर्म-अर्थ काम, मोक्ष ये चारों आरोग्यता की ही नींव पर खड़े हैं। 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत' अर्थात् आपके समक्ष दुनिया के सभी वैभव धन साधन और अधिकारों का भंडार पड़ा हो किन्तु आपका शरीर रोग पीड़ित है तो इससे आप क्या आनन्द उठा सकेंगे ? आपका स्वस्थ शरीर ही सभी सुख साधनों का आधार है। जब आधार ही कमजोर एवं खोखला हो तो आवेष किस प्रकार ठीक हो सकता है। तन अथवा मन के रोगी को संसार सुख तो बेकार है ही साथ ही वह परलोक सुख से भी वंचित हो जाता है। वह तो स्वप्न में भी सुखी नहीं हो सकता अतः दुनिया के समस्त कर्मों व सुखों में उत्तम स्वास्थ्य ही निहित है। स्वास्थ्य को नष्ट करके यदि आपने धर्म, अर्थ, ज्ञान का संग्रह किया है तो वह व्यर्थ है। इन्हें संग्रह कर लेने मात्र से ही आप सुखी नहीं हो जायेंगे। आपने M.A. तो कर लिया पर आँखें कमजोर कर टटोलते फिरें तो क्या फायदा ? करोड़ों की संपत्ति जमा करने के पीछे एक विशाल भवन के सुन्दर सुसज्जित पलंग पर बीमार होकर आर्तनाद करें तो कौन आप को बुद्धिमान कहेगा ? साधनों से तो सुख-शान्ति आपका निरोग शरीर ही पा सकता है। दौलत की ढेरी पर बैठे एक शारीरिक अथवा मानसिक बीमार की अपेक्षा सत्ता व अर्थ अधिकारों से हीन अपनी टूटी-झोंपड़ी में फर्श पर लेटा व्यक्ति अधिक सुखी है जिसके शरीर व मस्तिष्क में किसी रोग की छाया नहीं। परेशानी व कोई तड़पन नहीं।

आज के लोगों का ध्यान अपने शरीर की ओर न जाकर धन व कृत्रिम सजावटी सामानों की तरफ तेजी से जा रहा है। अपना जो साधन हमें उचित खान-पान, व्यायाम में लगाना चाहिए था उसे हम कृत्रिम साधनों में व्यय करते जा रहे हैं। हमारी दिनचर्या, नियम, पथ्य सभी अस्वाभाविक एवं प्रकृति

विरुद्ध होते जा रहे हैं। मानव बुद्धि पर कलि की ऐसी छत्र-छाया पड़ी है कि अब वह श्रम को हेय की दृष्टि से देखने लगा है और अपना हर सम्भव प्रयत्न इससे बचने को करता है। इस आरामपरस्ती और श्रम के अभाव ने हमारे शरीर को रोगों का घर बना दिया है। हमारे अन्दर की नित्य-प्रति के स्वास्थ्य सम्बन्धी उदासीनता ने हमें औषधियों के चक्कर में डालकर हमारी तमाम खुशियों का विनाश कर अशान्ति के ऐसे समुद्र में ढकेल दिया है जिसकी लहरों की लपेट से निकलना असम्भव सा हो रहा है। औषधियों के अन्तिम भयानक परिणामों को जानते हुए भी हम इसी की छाया में गुनगुनाना पसंद करते हैं। औषधियों के प्रति हमारा यह मोह स्वास्थ्य के लिये अभिशाप सिद्ध हो रहा है। आधुनिक समाज अब भोजन भी औषधि बिना नहीं खा सकता। यदि खा भी ले तो पचता नहीं। रात को नींद भी बिना गोली के नहीं आती। बाजार के उतार-चढ़ाव के साथ अब उसकी जिन्दगी भी उतरने-चढ़ने लगी है। संक्षेप में जिन्दगी सबसे सस्ती एवं शून्य हो गई है उसके स्वास्थ्य का सूर्य शनैः शनैः अस्त होता जा रहा है।

रहिमन यह भेषज करत
व्याधि न छाड़े साथ।
खग मृग बसहिं अरोग बन
हरि अनाथ के नाथ॥

यह विचारणीय बात है कि जंगली पशु-पक्षी जो प्रकृति के आधीन रहते हैं वे कितने स्वस्थ एवं तगड़े होते हैं पर आधुनिक प्राणी ने अपनी बुद्धि के घमंड में चूर होकर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर अपने को स्वस्थ एवं तगड़ा रखने के निमित्त अनेक औषधियों का आविष्कार किया। प्रकृति की गोदकी उपेक्षा कर उससे परे महलों में रहने लगा। प्राकृतिक भोज्य पदार्थों को ठुकरा कर अप्राकृतिक भोज्य पदार्थों को अपनाया। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे पहले की अपेक्षा असहाय कमजोर एवं रोगी बन गया। उसकी कपोल-कल्पित उड़ान जो स्वास्थ्य के लिये थी वही उसके लिये अभिशाप बन गई।

बिना कारण कोई भी बात नहीं होती। प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके ही मानव इतना रोगी और दुःखी हुआ है। अपथ्य, अनिद्रा, अप्राकृतिक जीवन का अपराध स्वयं करता है पर उसका दोष मौसम आदि के मत्थे मढ़ कर उससे छुटकारा पा लेना चाहता है। पर वह कहाँ बच पाता है। प्रकृति तो उसे दण्ड स्वरूप रोग के कारागार में डाल कर बन्दी बना लेती है। दुःख तो उसे अपने इसी काया से ही भोगना पड़ता है। मौसम आदि पर उसका दोषारोपण निराधार है। मौसम, हवा, आदि का प्रभाव तो समान रूप से सभी पर पड़ता है पर बीमार कुछ व्यक्ति ही देखे जाते हैं—और अधिकतर बचे रहते हैं। कमजोर और मजबूत होने का तर्क प्रस्तुत करना भी एक भूल ही है। उपचार काल में मैं अस्वस्थों पर सूक्ष्मता पूर्वक अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि दोखने में एक दुबले-पतले

की अपेक्षा तगड़ा और मजबूत व्यक्ति शीघ्र बीमार पड़ता है तथा पहले की अपेक्षा देर से ठीक होता है। इन्हें हर तरह से अपनी सुरक्षा करते हुए भी भयानक गर्मी में भी सर्दी सताती है जब कि जाड़े में भी दुबले-पतले साधनहीन व्यक्ति अपने एक ही फटे कपड़े पर मौज से ठण्डी हवा में बाहर घूमते हैं और इन्हें कुछ भी हानि नहीं होती। शारीरिक शक्ति और शरीर-स्थित जीवन शक्ति (जो रोगों से बचाती व उससे मुक्त करती है) में बड़ा अन्तर है। यही जीवन शक्ति स्वास्थ्य रक्षा में सहायक होती है जो प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से प्राप्त होती है। एक आदमी देखने में कमजोर हो सकता है पर उसका शरीर अपने अन्दर भरी जीवन शक्ति की वजह से स्वस्थ, निरोग, स्फूर्ति से भरा हुआ होगा। कुछ कीटाणु होना सुनकर ही दम तोड़ देते हैं जब कि उन बहादुरों के अन्दर किसी भी रोग के कीटाणु नहीं होते। कीटाणु मनुष्यों के मारने और जीवित रखनेवाला कदापि नहीं हो सकता। संक्षेप में कीटाणु से कोई रोग नहीं होता बल्कि अन्दर के विकार मैल सड़ने के बाद रोग होता है और तब उसमें कीटाणु पनपते हैं जो रोग-वृद्धि में सहायक होते हैं। स्वस्थ शरीर या फल में जब तक सड़ान उत्पन्न नहीं होती उसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते और यदि डाल दें तो वे मर जाते हैं क्योंकि वहाँ उनके खाने के लिए कोई चीज नहीं होती। याद रखिए आज का आधुनिक विज्ञान किसी भी चीज को दबाये तथा गर्मी देकर कीटाणु रहित तो कर सकता है पर श्वांस मार्ग से सीधे फेफड़ों में जानेवाले कीटाणुओं को रोकना उसके बस की बात नहीं। वे जाकर भी वहाँ सड़ान के अभाव में जीवित नहीं रह सकते। इस तथ्य को अनेकों भूत कालीन प्राकृतिक उपचारकों ने विभिन्न भयानक रोगों के कीटाणुओं को शरीर के अन्दर डाल कर प्रमाणित किया है और उन सभी की एक ही आवाज है कि—'अन्दर से साफ शरीर में कीटाणु कुछ नहीं कर सकते। कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके अन्दर कई रोगों के कीटाणु मिले हैं पर वे उससे सम्बन्धित रोगों के कभी शिकार नहीं हुए। आज सभी रोगों के कीटाणुओं का पता चल गया है पर फिर भी रोग पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से तथा नये-नये रूप में फैलता जा रहा है जिसका कारण तथा उपचार कुछ भी लोगों की समझ में नहीं आया है। बस लोग कीटाणु टटोलते फिर रहे हैं यह तो ठीक उसी प्रकार है जैसे पत्ते के सड़ते हुए पानी में पड़े हुए मच्छरों को बार-बार मारना और उससे मुक्ति के लिये कपोल कल्पित स्वप्न देखना क्या यह कभी सम्भव है? सम्भव तो तब था जब गड्ढे को बन्द कर देते जल पर हो हाथ लगाते। जड़ काट डालने पर तो सारा पेड़ स्वयं ही बिना कुछ किये ही सूख जायेगा। कीटाणु रोगों का कारण नहीं बल्कि कारण है शरीर स्थित सड़ते हुए विजातीय पदार्थ। जिन्हें हम अपने दूषित आहार व अप्राकृतिक जीवन व्यतीत

कर शरीर में बराबर डालते रहते है। शरीर का कायदा है कि जो चीज शरीर के अन्दर डाली जाय वह या तो खून मांस हड्डी के साथ मिल कर एक हो जाय अथवा मल मार्गों द्वारा बाहर निकल जाय। जब विजातीय पदार्थ मल मार्गों की अक्षमता के कारण बाहर नहीं निकल पाता तब शरीर स्थित जीवन शक्ति शरीर में गर्मी पैदा करके उसे जला डालने की या कोई नया रास्ता कायम कर उसे रोग के रूप में बाहर निकालने का प्रयत्न करती है। शरीर की इसी सफाई की क्रिया को हम रोग कहते हैं। आज को कोई भी वस्तु स्वास्थ्य के लिये नहीं वरन् स्वाद की दृष्टि से खायी जाती है। जीभ जो सिर्फ दो अंगुल की चीज है इसकी पूर्ति के पीछे ही स्वस्थ अस्वस्थ, साधु-असाधु, शराफ-बेईमान, ज्ञानी, चंचलचित्त, अकामुक कामुक, बुद्धिमान, बुद्धिहीन बन जाते हैं। जिसने जीभ की पकवानों, मिठाइयों, मिर्च, मसालों से पूजा की उसका धन, धर्म और स्वास्थ्य तथा लोक और परलोक सभी चौपट हो जाता है। जो वस्तु अप्राकृतिक ढग से स्वादिष्ट बनी होगी वह आसानी से हजम नहीं होती तथा अपनी स्वादिष्टता के कारण मनुष्य को पाचन शक्ति के बस के बाहर अधिक खाने को बाध्य कर देती है तथा अपनी उत्तेजनात्मक क्षमता के कारण मन को विचलित तथा भ्रमित कर देती है जिससे मनुष्य ध्यान और विवेक शून्य हो जाता है।

जब हमारे अप्राकृतिक जीवन तथा अप्राकृतिक पथ्यों के कारण शरीर में दूषित पदार्थों की मात्रा अधिक हो जाती है तब जीवन शक्ति इसके बोझ से दब जाती है और शरीर बेदील तथा रोगी हो जाता है। जब तक शरीर में विजातीय पदार्थ रहेगा शरीर स्थित जीवनशक्ति कभी चैन नहीं बैठ सकती, वह एक के बाद दूसरा, तीसरा तथा अनेकों प्रयत्न इसे बाहर निकालने को करती रहेगी।

आधुनिक औषधिवाद अपनी विषैली दवा के प्रभाव से शरीर के मल निष्कासन के वेग से होने वाली पीड़ा को ही समाप्त कर मरीजों को भ्रम में डाल दिए हैं। नशीले इन्जेक्शन और गोलियों के प्रभाव से रोगों के पीड़ित भाग को कुछ समय के लिये सुन्न करके रोगी को झूठी सान्त्वना दे देते हैं कि वे ठीक हो गये। रोगी भी अपनी पीड़ा का क्षणिक निवारण देखकर भ्रम में पड़ जाता है। लेकिन भविष्य में यही दबाया हुआ रोग भीतर-ही-भीतर जब अपनी शक्ति बढ़ाकर जब भयंकरता के साथ प्रगट होता है तो रोगी की जान पर ही आ बनती है। जीवन शक्ति जो आभ्यन्तरिक गन्दगी को साफ करती है उसके इस सफाई वाले कार्य में हम सहायता न करके उल्टे उसके मार्ग में दवाओं का रोड़ा अटका देते हैं। परिणामस्वरूप जीवनी-शक्ति दवाओं के सेवन से कमजोर पड़ जाने के कारण रोगों से मुकाबला नहीं कर पाती। सक्षम जीवन शक्ति प्राकृतिक सिद्धान्तों पर चलने व दवाओं के बहिष्कार से ही प्राप्त होती है। प्राकृतिक नियमों

का अनुकरण ही आपको आपके रोगों से मुक्ति दिला सकता है। अनेक घटनायें इस बात की साक्षी हैं कि अनेक स्थलों पर जहाँ औषधिवादी उपचारकों को निराशा हाथ लगी वहाँ साधन विहीन होते हुए भी मिट्टी के प्रिय बेटों ने अपने मिट्टी के हाथों से मिट्टी के द्वारा कितने ही मिट्टी के रुग्ण शरीरों को जो अकाल मृत्यु की गोद में थे, मिट्टी में मिलने से बचाया है।

प्राकृतिक उपचार द्वारा जब दूषित पदार्थों के बोझ से दबी हुई जीवन शक्ति मुक्त होकर शक्तिशाली हो जाती है तब वह शारीरिक छिपे हुए विकारों से दबे रोगों को साफ करके बाहर फेंकने लगती है जिसे हम रोगों का उभाड़ (Curative Crisis) कहते हैं। इसके पश्चात् ही जिस रोग का उपचार किया गया है वह स्वयं और अपने नये और पुराने साथी रोगों को साथ लेकर शरीर से विदा हो जाता है। अगर शरीर स्थित जीवन शक्ति का काफी ह्रास न हुआ हो और शरीर का कोई आवश्यक पुर्जा नष्ट न हुआ हो तो वह रोग चाहे उसका नाम कुछ भी हो, देखने में कितना भी भयानक एवं जटिल हो, वह उचित और सावधानी से प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अवश्य अच्छा किया जा सकता है। सभी रोग अच्छे होते हैं पर सभी रोगी नहीं। पर ऐसों को भी जो अपने अन्दर के किसी कमी के कारण अच्छे नहीं हो पाते उन्हें भी इससे इतना आराम तो अवश्य ही मिल जाता है कि वे अपनी शेष जिन्दगी शान्ति से काट सकें।

जीवन शक्ति बढ़ाना दो-चार दिन या हफ्तों की बात नहीं है। जब तक धीरे-धीरे सारी खराबियां शरीर से बाहर नहीं हो जातीं—जीवन शक्ति रोग निर्मूल करने हेतु समर्थ नहीं हो पाती। इसमें भी कभी-कभी महीनों और सालों लग जाते हैं। पर किसने ऐसे भी रोगी मिले हैं जो अपनी जटिल और पुरानी बीमारियों से कुछ ही हफ्ते में मुक्त हो गये। अनुचित खान-पान के अतिरिक्त दवाओं का भी विष शरीर में होता है जिसे भी निकालने में समय लगता है। जो रोगी अधैर्य के कारण हतोत्साहित हो जाते हैं या खाने-पीने में असंयम बर्तने लगते हैं, वे या तो पूरे अच्छे नहीं होते या अधिक समय लेते हैं। रोगों को दूर करने के लिए दृढ़ता के साथ संयम पालन, प्रसन्न-चित्त और आशावान् रहना आवश्यक है। मैंने देखा है कि आशावान् जटिल रोग का रोगी एक धैर्यहीन निराश तथा हल्के रोग के रोगी की अपेक्षा शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करता है।

अनेक प्रकार के उपचार कराने के बाद रोगों की बिगड़ी अवस्था में दवाओं के विष से शरीर को पूरी तरह विमुक्त कर अपना कमजोर शरीर लेकर लोग प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में या खास तौर से इसे आजमाने आते हैं। अतः उनके शरीर को तमाम विषैले पदार्थों से मुक्त कर जीवन शक्ति मजबूत करने में समय लग जाता

अवश्यम्भावी है इनमें भी ७५ प्रतिशत ठीक हो जाते हैं। रोग कोई जादू-मन्तर की बात तो है नहीं समय तो लगता ही है। हठी और पुराने रोगों से तो जम कर मोर्चा लेना ही पड़ता है, समय इस लिये लगता है कि पुराने रोगों में शरीर के अंग-अंग, कोष-कोष खून रस-रेशे सभी विकार युक्त हो जाते हैं। उनमें खूब मैल भर जाता है। रोगी का शरीर भी एक ऐसी मशीनकी तरह है जिसका एक-एक पुर्जा मैल भर जाने से चलने में असमर्थ हो गया होता है।

जब शरीर विकारों से मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है तो रोग निर्मूल हो जाता है। प्राकृतिक उपचार वस्तुतः कायाकल्प का उपचार है।

इस उपचार पद्धति में उपवास फलाहार, रसाहार, अल्पाहार, मट्ठा व दुग्धाहार तथा उचित पंचतत्वों के उपचार द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है जिससे खून और नाड़ियां दोष मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक दशा को प्राप्त कर लें शरीर को भीतर से झाड़-पोंछ कर ऐसा बना दिया जाता है कि वहां रोग और उसके कीटाणु न रह सकें। आसन और प्राणायाम का इसके बाद अभ्यास कराने से शरीर नवीन होकर चमकने लगता है और शरीर दीर्घायु हो जाता है। मन शान्त और बुद्धि बढ़ जाती है।

शारीरिक आरोग्यता कोई बाहरी वस्तु नहीं है बल्कि मानव तो जन्म से ही आनंद-मय है। हम रोगी और कमजोर तभी होते हैं जब प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। सत्य क्या है। इसे समझने का प्रयत्न करें। दवाओं से कभी किसी का न भला हुआ है और न होगा। इसका अस्तित्व अलिक है। स्थायी लाभ तो इन चकाचौंध से बाहर प्राकृतिक नियमों के अनुसरण से ही प्राप्त हो सकता है। ईश्वर ने हमें संसार में कमजोर बना कर नहीं भेजा है। उसने यहां सब कुछ दे रक्खा है जिसे हमें अपनी बुद्धि के द्वारा प्राप्त करना पड़ेगा। आप के अन्दर ऐसी शक्ति विद्यमान है जिसे जागृत कर आप सर्व शक्तिमान ब्रह्म बन सकते हैं। यह सब योग के द्वारा अवश्य संभव है। आप में योग और समाधि की अवस्था तभी आ सकती है जब आप स्वस्थ प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने शरीर को साफ और उत्तेजना-रहित रक्खेंगे। प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर सभी लाभों को प्राप्त कीजिए।

—×०×—

जीवन का अध्ययन

जीवन का अध्ययन कभी पूरा नहीं होता। मनुष्य मरता है तब तक अपने और दूसरों के बारे में नयी नयी बातें जानता ही रहता है। उसे प्रति दिन नये-नये अनुभव होते हैं और उनसे जीवन के अटल नियमों के बारे में उसकी बुद्धि स्पष्ट बनती जाती है।

—मशरूवाला

जैन दर्शन के आधार पर—

चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति का मार्ग

[श्री रतनलालजी जैन]

यह निश्चय हो जाने पर कि आत्मा का शुद्ध चिदानन्द स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है, यह जानना परमावश्यक है कि मुमुक्षु जीव किस मार्ग का अवलम्बन करे कि जिस पर चल कर वह अपने शुद्ध ज्ञान आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त कर सके।

मुमुक्षु प्राणी के लिये आवश्यक है कि सबसे प्रथम ज्ञानलोचन करके अपने वास्तविक स्वरूप का निश्चय करे। जब तक आदर्श निश्चित नहीं तब तक उसके (आदर्श के) प्राप्त करने का मार्ग कैसे ढूंढा जा सकता है। इसलिये प्रयत्न पूर्वक दृढ़ता के साथ, निष्पक्ष भाव से भिन्न-भिन्न बातों का निर्णय करके अपने वास्तविक स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे। जब उसको यह निश्चित हो जावे कि उसकी आत्मा पूर्ण ज्ञान से प्रकाशित एवं दिव्य आनन्द से भरपूर है उसका यह ज्ञान आनन्दमय स्वरूप उसके पूर्व संचित कर्मों से आच्छादित व विकृत हो रहा है, जिसके कारण उसकी आत्मा अज्ञानी, काम-क्रोध आदि भावनाओं से युक्त, अनेक प्रकार के दुःख एवं चिन्ताओं से पीड़ित दीखता है, यह कर्माण शरीर, पूर्वकृत कार्यों के समय जो रागद्वेष रूप उसकी वृत्तियां थी उनके कारण संचित हुआ है यह व्यक्ति काम-क्रोध आदि समस्त भावना एवं वृत्तियों के त्यागने अर्थात् वीतराग होने से भविष्य में नवीन कर्म बन्धन से मुक्त रह सकेगा और साथ ही साथ पूर्व संचित कर्म बन्धन को नष्ट भी कर सकेगा इन पूर्व संचित कर्मों के बन्धन से मुक्त होने पर उसका शुद्ध स्वरूप जो ज्ञान के तेज से प्रदीप्त है अलौकिक दिव्य आनन्द से ओतप्रोत है, अनन्त शक्ति से युक्त है शांतिमयी है प्रकट हो जावेगा। इन बातों की दृढ़ भावनायें उसके हृदय में भली-भांति अंकित हो जानी चाहिए। संदेहात्मक भावों को जो प्रायः हृदय में उठा करते हैं विवेक बुद्धि, तीव्र आलोचना एवं हार्दिक पश्चात्ताप के अस्त्रों से भेद कर निकाल दे। उपरोक्त बातों का सन्देह रहित श्रद्धालु हृदय-पटल पर भली-भांति अंकित हो जाना चाहिये। शुद्ध चिदानन्द प्राप्ति का आदर्श सदैव सामने रहे एवं उसकी प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न शील रहे। श्रद्धा का दीप हृदय में सदा प्रज्वलित रहे। इसके प्रकाश बिना अज्ञान अंधकार में मार्ग नहीं मिलेगा और पद-पद पर मार्ग से विचलित होना पड़ेगा। श्रद्धा की दीप हृदय में उस समय तक प्रज्वलित रहे जब तक उसका स्वयं ज्ञान का प्रकाश नहीं ले लेता है।

सत्पथ का यात्री

मार्ग पर चलते हुए सत्पथके यात्री के हृदय

में प्रायः भ्रम उत्पन्न होने लगता है विश्वास की नींव हिलने लगती है नाना प्रकार के प्रलोभन चित्त को आकर्षित करने वाली मनोहर आकृतियां धारण करके उसके चित्त को डावांडोल कर देते हैं। उसको भासने लगता है कि सांसारिक सुखों के त्यागने में उसने मूर्खता की है ये सांसारिक भोग तो उसके लिये ही बनाये गये हैं। ऐसी दशा में उसकी एक अनोखी स्थिति हो जाती है। इस सन्देह व भ्रात्मक स्थिति हो जाने पर उसको तीव्र विवेक बुद्धि द्वारा आत्म स्वरूप वर्तमान स्थिति, अन्तिम ध्येय आदि की परीक्षा पुनः करनी पड़ती है। इस परीक्षा के करने पर उसका हृदय निर्मल हो जाता है उसका आदर्श अधिक स्वच्छ होकर पुन उसके हृदय मन्दिर मे विराजमान हो जाता है भ्रम नष्ट हो जाता है और श्रद्धा का दीप पुनः द्विगुण प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता है।

वह सत्पथ का यात्री पूर्व संचित कर्म शक्ति को जिसके कारण उसकी वर्तमान स्थिति ज्ञान हीन मलिन एवं विकृत हो रही है नष्ट करने के लिये उद्यत होता है। काम क्रोध आदि कुवृत्तियां तथा अशुभ भावनाओं को जिनके कारण नवीन कर्म शक्ति उत्पन्न होती है रोकने के लिये तत्पर होता है। ये कुवृत्तियां व अशुभ भावनायें मनुष्य की अनेक प्रकार की इच्छा व वासनाओं से उत्पन्न होती हैं। इनका रोकना सुगम हीनहींवरन् अत्यन्त दुष्कर है। ये वासनायें हृदय सागर में जलतरंग की भांति उठा करती हैं मन की शान्ति को भंग करके उसे क्षुब्ध कर देती हैं। ये वासनायें उसी समय रोकी जा सकती हैं जब मन नियंत्रित हो जावे उसकी चंचलता संयम के अंकुश द्वारा वश में कर ली जावे। वासना रोकने एवं मन को नियंत्रित करने के लिये आवश्यक है कि सत्पथका यात्री इन्द्रिय जनित विषय वासना को त्यागे। स्त्रियों के साथ भोग विलास करने, मदिरा आदि मादक वस्तुयें पीकर मदोन्मत्त होने, अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करने की लालसा, सुन्दर युवतियों के हाव-भाव पूर्ण गाना सुनने एवं नाच देखने की इच्छा, अनेक प्रकार के चटकीले-भड़कीले मन को डावांडोल करने वाले वस्त्र पहिनने तथा इत्र फुलेल क्रीम (Cream) आदि अनेक सुगंधित एवं सौन्दर्योपयोगी पदार्थों से शरीर को सुसज्जित करने की भावना को छोड़ दे। सारांश में उसको अपनी समस्त पाशविक वृत्तियों पर नियंत्रण का अंकुश लगाना पड़ेगा। शरीर को वश में रखने के लिये भोजन की मात्रा एवं संख्या में कमी करनी होगी। कभी-कभी उपवास करना होगा। श्रम को मिटाने के लिये शरीर को आवश्यक आराम देते हुए निद्रा आदि का समय नियत करना होगा। आलस्य व प्रमाद को अपने से दूर रखना होगा। दैनिक व्यवहार में छल, कपट, दूसरों को धोखा देना, असत्य बोलना आदि छोड़ना होगा। अपनी इच्छाओं को सीमित रखने के लिये आवश्यक पदार्थों की संख्या, मात्रा आदि में भी परिस्थिति के अनुसार नियम बनाने होंगे। इस

प्रकार प्रयत्न व अभ्यास करते रहने से उसकी क्षुद्र वृत्तियां निर्बल पड़ जावेंगी तथा अशुभ भावनायें लुप्त होने लगेंगी। इन क्षुद्र वृत्तियों के निर्बल होने के साथ-साथ उससे हृदय में दया, प्रेम, परोपकार, शान्ति, नम्रता, निर्भयता आदि सद्गुणों का भी प्रादुर्भाव होगा।

सत्पथ के यात्री के मार्ग में प्रलोभन आकर कभी-कभी चट्टान की भांति खड़े हो जावेंगे। वासना व इच्छायें सुगमता से परास्त नहीं होंगी। उनके साथ घोर संग्राम करना पड़ेगा ये बार-बार नाना प्रकार के सुन्दर आकर्षक रूप बना कर उसको ललचायेंगी और उसको भ्रम में डाल कर सन्मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करेंगी। जब कभी जहां कहीं अवसर मिलेगा ये वासनायें अप्रत्यक्ष आघात करेंगी और उनको सत्पथ से भ्रष्ट करने का उद्योग करेंगी। ऐसे कठिन अवसरों पर आदर्श के प्रति अटूट श्रद्धा का प्रज्वलित दीप उसके पथ को प्रकाशित रखेगा और वासना के लुभाने वाले प्रलोभनों से उसकी रक्षा करेगा इस कटकाकीर्ण मार्ग से निकल जाने पर उसमें आत्म शक्ति, आत्म विश्वास, साहस, निर्भयता विवेक आदि सद्गुणों का विकास अधिकाधिक होने लगेगा।

वासना को नियन्त्रित रखने के लिये आवश्यक है कि सत्पथ का यात्री अपने प्रतिदिन के कार्यों की समालोचना करे। जो कार्य उसने किये हों जो शब्द उसने बोले हों या जो विचार उसके हृदय में आये हों उनकी सत्यता को कसौटी पर निर्दयता के साथ जांचे। जांचने पर जो विचार, कार्य या वचन निन्द्य या कलुषित प्रमाणित हों, उन पर हार्दिक पश्चात्ताप करे एवं संकल्प करे कि भविष्य में ऐसे गर्हित कार्य वचन या विचार न करे। महात्मा गांधी, इब्राहीम लिंकन आदि महान् पुरुषों की जीवनियां बतलाती हैं कि दैनिक कार्यों की समालोचना द्वारा ही ये महान् पुरुष अपनी आत्माओं को उन्नत बना सके हैं। इस प्रकार दैनिक दिनचर्या की भलीभांति समीक्षा करने से उसका चरित्र एवं मनोवृत्तियां अतीव निर्मल व शुद्ध हो जावेंगी।

सत्पथ-यात्री को उपहास के द्वार में से भी निकल कर जाना होगा। उसके प्रिय मित्र उसका उपहास व मखोल उड़ाने लगेंगे उसको मूर्ख सनकी कहेंगे। उसके व्यवहार को सामाजिक जीवन के विरुद्ध व हानिकारक समझेंगे। वे उसके हृदय में ज्ञान के प्रज्वलित प्रकाश को न देख सकेंगे। अपने को अधिक बुद्धिमान समझ कर उसको उसके कर्तव्य पर उपदेश देने लगेंगे। इससे उसके हृदय में मानसिक वेदना व ग्लानि उत्पन्न होगी उसको अपने चारों ओर अंधकार दिखाई पड़ेगा। कुछ काल तक उसकी दशा कर्तव्य-विमूढ संज्ञाहीन सदृश हो जावेगी। यह मानसिक वेदना उसको आत्मस्वरूप एवं आदर्श पर गहन दृष्टि से विचार करने के लिये बाध्य करेगी। इस आत्म स्वरूप मनन से उसे प्रतीत हो जावेगा कि उसकी यह मानसिक वेदना उसके हृदय की एक गुप्त वासना

का परिणाम है। यह वासना उसके हृदय में अपना यश एवं मित्रों के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने की भावना के रूप में प्रगट हुई है। इस सत्य के भासने पर मानसिक वेदना उसके हृदय से लुप्त हो जावेगी, उसका चित्त निर्मल ज्ञान से प्रकाशित होकर शान्त हो जावेगा। शान्ति व प्रेम से परिपूर्ण होकर यात्री आदर्श के मार्ग पर आगे बढ़ेगा।

मुमुक्षु यात्री को सत्पथ पर चलते हुए आगे यह ज्ञात पड़ता है कि वह अकेला ही रह गया है। स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बीजन मित्र आदि हितैषियों ने उसे परित्यक्त कर दिया है। उसका कोई साथी नहीं है। अपने को अकेला प्रतीत करके उसका चित्त दुखी व खिन्न हो जाता है, मन उचट जाता है संसार अन्धकारमय दीखने लगता है, उसकी दशा विचित्र हो जाती है, अनेक प्रकार के विकल्पों के भंवर में गोता लगाने लगता है। कुछ समय तक ऐसी दशा में रहने पर उसका ध्यान संसार की परिवर्तनशील एवं अस्थिर अवस्था की ओर जाता है। पूर्व संचित कर्मों के कारण प्राणी किस प्रकार भिन्न-भिन्न योनियों में अनेक प्रकार के कष्ट व यंत्रणायें अकेला सह रहा है। कोई उसके दुख को दूर नहीं करता है न उसको विपत्ति से बचाता है उसको अकेला ही संसार में भ्रमण करना पड़ता है। इनका चित्र उसके नेत्रों के सामने घूमने लगता है। यह जान कर उसका हृदय खेद व खिन्न हो जाता है कि मानव समाज किस प्रकार अपनी वासना पूर्ति के लिये सांसारिक संघर्ष में फंसा हुआ शारीरिक कष्ट एवं मानसिक चिन्ता से व्यथित है। ऐसी अवस्था में उसके हृदय से अकेलेपन की अनुभूति का दुःख लुप्त हो जाता है। उसके हृदय में मानव समाज एवं प्राणीमात्र के दुःखों के साथ सहानुभूति दया व प्रेम जागृत हो जाते हैं। उसका मन मानव समाज के कल्याणकारी कार्यों की ओर प्रवृत्त हो जाता है। प्राणिमात्र की विशेष कर मानव समाज की सेवा करना अपना कर्तव्य समझने लगता है। अज्ञान अन्धकार को दूर करने, विद्या का प्रकाश फैलाने, रोगियों के लिये चिकित्सा एवं औषधि का प्रबन्ध करने, निर्धन दीन मनुष्यों के लिये जीविका के कार्य ढूंढने आर्थिक सहायता पहुंचाने तथा दुखित जीवों के कष्ट निवारण करने के लिये उद्यत हो जाता है। मनुष्य पशु, पक्षी, कृमि आदि किसी प्राणी को कष्ट देना उसे अरुचिकर प्रतीत होने लगता है। पशु, पक्षी आदि प्राणियों की हिंसा का सर्वथा त्याग कर देता है। व्यापार आदि सांसारिक कार्यों में अन्य मनुष्यों के साथ प्रतियोगिता करना उसे अच्छा नहीं लगता है, जिससे बहुत से मनुष्य जो उससे पहिले व्यापार आदि के कारण द्वेष रखते थे। प्रेम करने लगते हैं। सच्चरित्र एवं उच्च वृत्तिधारी मनुष्य जिनसे वह पहिले परिचित भी न था उनके सहवास के इच्छुक हो जाते हैं और उसके पास आने लगते हैं।

क्षुद्र वृत्तियों के नष्ट हो जाने पर उस सत्पथ यात्री के हृदय में शान्ति व उच्च

वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। उसके हृदय में शान्ति, प्रेम सत्य, दया, क्षमा, नम्रता, सरलता, उदारता आदि उच्च भावनाओं का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। ज्ञान के प्रकाश से उसकी अन्तरात्मा प्रदीप्त होने लगती है। उसके हृदय-सागर में दिव्य अलौकिक आनन्द की लहरें एक के बाद दूसरी उठने लगती हैं और वह अपनी आत्मा में अपूर्व स्फूर्ति व आह्लाद अनुभव करता है। उसका हृदय निर्मल उदार व विशाल हो जाता है। विश्व प्रेम ज्ञान एवं आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता है ऐसी स्थिति में शरीर से ममत्व कम हो जाता है। मोह के क्षीण होने से व्यापार आदि सांसारिक कार्य उसको झंझट प्रतीत होने लगते हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, धन-धान्य आदि वस्तुओं से चित्त हट जाता है। गृह में निर्ममत्व होकर जल में कमल की भांति अलिप्त रहता है, अथवा गृह त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगता है। निर्ममत्व दशा की महिमा तत्वज्ञान तरंगिणी में निम्नलिखित शब्दों में की है :—

निर्ममत्वं परं तत्वं,
ध्यानं चापि व्रतं सुखं।
शीलं स्वरोधनं तस्मा-
न्निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥

अर्थात् निर्ममत्व होना महान तत्व है यही ध्यान, व्रत, सुख, शील एवं इन्द्रिय निरोध है, इसलिये निर्ममत्व भाव का सदा चिन्तवन किया जावे। निर्मोही की दशा साम्य स्थितप्रज्ञ सदृश हो जाती है। भगवद्गीता अध्याय २ में (२-५५,५६,५७,५८,७१) श्लोकों में स्थितप्रज्ञ की स्थिति निम्न प्रकार बताताई है :—

प्रजहाति यदा कामा-
न्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः
स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः
सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभय क्रोधः
स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
यः सर्वत्रानभिस्नेह-
स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
यदा संहरते चायं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
विहाय कामान्यः सर्वा-
न्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः
स शान्तिमधिगच्छति ॥

अर्थात् हे पार्थ (अर्जुन) जब कोई मनुष्य अपने मन में उत्पन्न हुई समस्त वासनाओं को त्याग देता है और अपने आप ही में सन्तुष्ट होकर रहता है उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। दुख से जिसके मन को खेद नहीं होता है, सुख में जिसकी आसक्ति नहीं है और जिसके राग और क्रोध नष्ट हो गये हैं उसको स्थित प्रज्ञ

मुनि कहते है। सब बातों में जिसका मन आसक्ति रहित हो गया है और जिसको यथा प्राप्त शुभ अथवा अशुभ वस्तु में प्रसन्नता या विषाद नहीं होता है उसकी बुद्धि को स्थिर कहा जाता है। जिस प्रकार कछुवा अपने हस्तपाद आदि अंगों को सब ओर से सिकोड़ लेता है उसी प्रकार जब कोई मनुष्य अपनी इन्द्रियों को भोग-विलास आदि (इन्द्रियों के) विषयों से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि को स्थिर कहा जाता है। जो पुरुष सब प्रकार की कामनाओं को त्याग देता है एवं निस्पृह होकर व्यवहार करता है तथा जो ममत्व व अहंकार से विमुक्त है उसे ही शान्ति मिलती है। इस साम्य स्थिति के सम्बन्ध में श्री अमितगति आचार्य ने सामायिक पाठ में कहा है-

दुःखे सुखे वैरणि बन्धु वर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृता शेष ममत्व बुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापिनाथ॥

अर्थात् हे नाथ! समस्त मोह ममता को नष्ट करके ऐसी साम्यस्थित मेरे हृदय को दान करो कि जिससे मैं सुख व दुःख में शत्रु व मित्र में लाभ व हानि में गृह व वन में एक ही समान रहूं।

इस साम्य भाव को पंडित जुगलकिशोर जी ने मेरी भावना नामक पाठ में बड़ी ही सुन्दर ललित कविता में दर्शाया है:—

होकर सुख में मग्न न फूले,
दुख में कभी न घबड़ावे।
पर्वत नदी श्मशान भयानक,
अटवी से नहिं भय खावे॥
रहे अडोल-अकंप निरन्तर,
यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में,
सहन शीलता दिखलावे॥

ऐसी साम्य स्थिति हो जाने पर वह संयमी संयम व तप द्वारा पूर्व संचित कर्म शक्ति को वेग के साथ नष्ट करने लगता है एवं नवीन कर्मों का बन्धन भी नहीं करता है। जितनी-जितनी पूर्व संचित कर्म शक्ति नष्ट होती जाती है उतनी-उतनी ही उसकी अव्यक्त आत्मिक शक्तियों का विकास होने लगता है उसकी वृत्ति व भावनायें अधिक स्वच्छ व निर्मल होती जाती है उसके अव्यक्त ज्ञानानन्द स्वभाव का प्रकाश बढ़ता जाता है। धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते ऐसा समय इस या आगामी जीवन में आ जाता है कि जब उसके समस्त घाति कर्म परमाणुओं का बन्धन टूट जाता है। सम्पूर्ण घाति कर्म शक्ति नष्ट हो जाती है। इस घाति कर्म शक्ति के नष्ट होते ही वह अपने शुद्ध स्वरूप पूर्ण दर्शन ज्ञान आनन्द व वीर्य से जगमगा उठता है। वह आत्मा जीवन्मुक्त होकर पूर्ण आनन्द से ओत प्रोत हो जाता है एवं उस दिव्य अनुपम अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करता हुआ उसमें मग्न हो जाता है। उसकी दिव्य ज्ञान ज्योति में संसार के समस्त पदार्थ उनके सर्व गुण एवं उनकी समस्त अवस्थायें झलकने

लगती है। विश्व प्रेम से प्रेरित होकर उसकी दिव्य वाणी का संचार होता है जिसे सुन कर संसार के प्राणियों की मोह निद्रा भंग हो जाती है एवं वे सन्मार्ग पर लगते हैं।

आयु तथा अन्य अघाति कर्मों के नष्ट हो जाने पर सूक्ष्म कार्माण शरीर-भिन्न हो जाता है इस सूक्ष्म कार्माण शरीर के नष्ट भ्रष्ट होते ही बाह्य भौतिक शरीर से भी सम्बन्ध छूट जाता है। वह जीवन्मुक्त आत्मा कृत कार्य होकर परमात्म अवस्था को प्राप्त हो जाता है और संसार के उर्ध्व भाग में जाकर विराजमान हो जाता है। वहां वह अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में मग्न होकर अनन्तकाल तक दिव्य अनुपम अलौकिक आनन्द सुख को भोगता रहता है एवं उसको दिव्य ज्ञान ज्योति में संसार के समस्त पदार्थ आलोकित होते रहते हैं। कर्मशक्ति के पूर्णतया नष्ट एवं सूक्ष्म कार्माण शरीर के सर्वथा छिन्न-भिन्न हो जाने पर ऐसी कोई शक्ति नहीं रहती है जो उस परमात्मा के शुद्ध ज्ञान आनन्द स्वरूप में विघ्न डाल सके या उसमें रागद्वेष आदि विभाव उत्पन्न कर सके। इसलिये वह मुक्त आत्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में सदा के लिए मग्न हो जाता है।

"समय का मूल्य"

समय नाम की जो वस्तु है वह बहुत ही मूल्यवान है। लाख रुपया व्यय करने पर भी एक क्षण का समय कभी नहीं मिल सकता। अतः हमको समय का आदर करना चाहिए। जो समय का आदर करता है वह काल को जीत लेता है अर्थात् जन्म-मरण से सदा के लिए छूट जाता है। फिर उसे काल कभी नहीं मार सकता। यों समझना चाहिए कि अपने समय को नष्ट करना मनुष्य जन्म को नष्ट करना है।

—स्व० श्री जयदयाल गोयन्दका

कुण्डलनी की गति

[ब्रह्मचारी श्री वृजेन्द्रसिंहजी]

मानव शरीर में नाड़ियों का जाल बिछा है। ये नाड़ियाँ लगभग साढ़े तीन करोड़ मानी जाती हैं। इनमें बहत्तर हजार मुख्य हैं। योगशास्त्र में केवल दस की प्रधानता है। दसों में तीन नाड़ियों को सर्व श्रेष्ठता दी गई है। इनके नाम क्रमशः—इड़ा, पिंगला व सुष्मणा है। सभी नाड़ियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। मस्तिष्क मन का स्थान है। मन आत्मा से शक्ति पाता है और मस्तिष्क व नाड़ियों को देता रहता है। इस प्रकार आत्मशक्ति का मुख्य स्थान है। आत्मशक्ति ही प्राणशक्ति (Vital force) अथवा जीवन शक्ति (Life force) है।

आत्मशक्ति इड़ा नाड़ी में प्रवाहित होती है तब मनुष्य की रुचि कार्यों के करने में बढ़ जाती है। यहाँ पर सत् गुण की प्रधानता रहती है, फलस्वरूप शीतलता रहती है। अतः इड़ा को चन्द्र व यमुना नाड़ी के नाम से भी पुकारते हैं। ऐसी अवस्था में श्वास-गति बांये स्वर से चला करती है।

पिंगला में आत्मशक्ति का प्रवाह होता है तो निद्रा, आलस्य, भय आदि तामसिक विचार उठा करते हैं। यहाँ पर तमोगुण प्रधान रहता है। श्वास की गति दाहिने स्वर से चलती है यह इसकी पहचान है।

सुष्मणागत आत्मशक्ति का प्रवाह होने से मन में दैवी विद्या (आत्म-सम्बन्धी) विचार उत्पन्न होते हैं। श्वास-गति नासिका के दोनों स्वरों से चलती है। अतः मनुष्य के सभी विचारों तथा कार्यों का आधार ही आत्मशक्ति है।

सुष्मणा में आत्मशक्ति का प्रवाह सहस्रार से प्रारम्भ होता है और उसके निम्न-भाग (स्वयम्भूलिंग) के आवेष्टित सुप्त अवस्था में रह जाता है। यहाँ से आगे जाने का मार्ग न होने पर इसी अवस्था में घनीभूत होता जाता है। अतः शक्ति-विकास की चरमतम अवस्था—चरम जड़ावस्था है। इस जड़ा भाव में निद्रिता पराशक्ति जीवभाव की अवस्था लिए रहती है। यही कुण्डलनी है।

भावार्थ है कि आत्मशक्ति का प्रवाह ही सुष्मणा के निम्न भाग में सुप्त अवस्था का रूप ले लेता है जो कुण्डलनी नाम से जाना जाता है। कुण्डलनी के अनेक नाम हैं, जैसे—योग-दर्शन में 'क्रियाशक्ति', कबीर के शब्दों में 'सुरति' तथा सन्त सम्प्रदाय में भी 'सुरति', वैष्णव शास्त्रों में 'भगवती माँ', शिव उपासकों की 'शिव-शक्ति' या 'आदिशक्ति', गीता में 'दैवी माया', कहीं-कहीं पर 'प्राणशक्ति (Vital force)', 'जीवन शक्ति (Life-force)' और गुरु भक्तों की उपास्य यही कुण्डलनी चैतन्य होने पर गुरु नाम से पुकारी जाती है।

सहस्रार से कन्द की ओर सुष्मणागत

आत्मशक्ति की गतिधारा बाह्याभ्यान्तरिक प्रवाह के नाम से जानी जाती है। इससे आकर्षित मन की गति धारा 'पशु भाव' अथवा स्थूल की ओर होती है। आध्यात्मिक दर्शन में मन की इस गति का नाम 'प्रेय-मार्ग' है। इस मनः शक्ति का प्रवाह केन्द्र (Centre) से विपरीत धारा में होता है। अतः इसे बाह्य शक्ति (External force) के नाम से जानते हैं तथा प्राणशक्ति की इस गति का नाम Extrovarsal movement है। वास्तव में यह प्राण की शेष शक्ति है जो किसी भी कार्य में न आने से सुप्त अवस्था में रह जाती है। यह शेष शक्ति अपने में अनन्त है। यदि मनुष्य इसे कार्य रूप दे सके तो वह मनुष्य नहीं देवत्व की उपाधि व शक्ति प्राप्त कर लेता है। विलक्षण शक्तियों से युक्त हो जाता है। इसके कार्य रूप (जाग्रत करने से) करने से ही ब्रह्मविद्या अथवा योग-मार्ग का आरम्भ होता है।

परन्तु याद रक्खें कि यह शक्ति आत्मा (शुद्ध चेतन ब्रह्म) की है। अतः अपने प्रयत्न से इस पर नियन्त्रण करने के सारे प्रयत्न विफलता को प्राप्त होते हैं। शेष शक्ति अपने में अनन्त होने से अनन्त सामर्थ्यवान होने से ही नियन्त्रित हो सकती है। जिन्होंने मन एवं इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है तथा जो आत्मा में स्थित है, उपनिषद् के शब्दों में सामर्थ्यवान है यही सद्गुरु पद वाच्य है। सद्गुरु से शक्ति सम्पात होने पर ही कुण्डलनी जाग्रत हो जाती है। मानव की सुप्त शक्तियाँ जाग्रत होकर उसमें विलक्षणता पैदा करती हैं। इन दैवी शक्तियों से युक्त मानव ही देव है। कहने का भाव है कि सद्गुरु की कृपा ही से मानव ब्रह्मविद्या में प्रवेश करता है तथा इसी गुरु-कृपा के सहारे अपने स्वरूप में स्थिति पाता है। कारण कन्द में जाकर आत्मशक्ति इतनी घनीभूत हो जाती है कि मानव-मानव पहचानने में भी नहीं आता। कन्द के कुण्डलनी सद्गुरु-कृपा के बिना अन्धी है। अतः कबीरदासजी को कहना पड़ा है कि :—

शब्द बिना सुरति आंधरी,
कहो कहां को जाय।
द्वार न पावे शब्द का,
फिर-फिर भटका खाय॥

ये सद्गुरु अपने में पूर्ण ब्रह्म ही है। जिनसे शक्ति सम्पात ही कुण्डलनी ललककर अपने इष्ट (शिव) की ओर चल पड़ती है। इसी से भगवान कृष्ण जी गीता अध्याय ७ श्लोक १४ में कहते हैं :—

दैवी ह्येषा गुणमयी,
मम माया दुरत्यया।
मामेव प्रपद्यन्ते,
माया मेतां तरन्ति ते॥

कहने का आशय भगवान् का यही है कि सद्गुरु के बिना ब्रह्मविद्या में प्रवेश नहीं हो सकता सद्गुरु की शरण ही से त्रिगुणमयी माया से युक्त कुण्डलनी (आत्म शक्ति) पुनः आत्मा में स्थित हो सकती है। कुण्डलनी के जागरण से ही योग अथवा ब्रह्मविद्या के प्रथम सोपान पर पग रखना मात्र प्रारंभ होता है। जाग्रत कुण्डलनी की गति स्थूल से सूक्ष्म

अथवा पशुभाव से दैवीभाव की ओर ही जाती है। सहस्रारमें जा आत्मामें लय हो जाती है। अमरत्व प्राप्त करती है। यहां जीव-जीव नरहकर शिव पद वाच्य है। इसी से कहा है-'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' आत्मशक्ति का मूलाधार से सहस्रार की ओर चलकर चलने का नाम ही आभ्यान्तरिक प्रवाह है। आत्मशक्ति का आभ्यान्तरिक प्रवाह ही भक्ति है।

Introversal movement of vitality is Devotion. इस आभ्यान्तरिक प्रवाह से मन आकर्षित किया जाता है जो आन्तरिक सत्संग कहलाता है। यह अवस्था मन की निर्लिप्त होती है। ठीक कमल के समान होती है। कमल जल में रहते जल के प्रभाव से मुक्त है। इसी प्रकार मन भी जागतिक कर्मेन्द्रियों के करते हुये उनके कर्मफल भोग से मुक्त रहना है। यह सब करने से नहीं अपितु गुरु-कृपा के सहारे रहने से और यह सोचने से होता है कि स्वतः गुरु-कृपा ऐसा कर रही है। जिन पुरुषों को सद्गुरु की शरण प्राप्त है, वे इस रहस्य को भलीभांति जान रहे हैं।

कुण्डलनी योग ही 'ध्यानयोग' है। ध्यान योग में साधक जब बैठता है तब ब्रह्मानन्द की अनुभूति करता है। ऐसी अवस्था में कुण्डलनी मन के कोषों को भी पार करती हुई हिरण्मय कोष से ऊपर जाती है जहां शिव रूप आत्मा की स्थिति है। इस मध्य की अनुभूतियां मन के कोषों में स्थित आत्म शक्ति की ही होती हैं जिन्हें साधक का मन अनुभव करता है तथा उसी कोष में स्थित शक्ति के आनन्द से विभोर हो उठता है। यह आनन्द शब्दों से कहा नहीं जा सकता है, स्वतः अनुभवगम्य है ऐसे समय साधक का मन आत्मशक्तिसे कम्पित होता है जिसका प्रभाव शरीर पर भी देखने को मिलता है। इस प्रभाव के लक्षण निम्न है :—

रोमांच, कम्पन, हँसना, रोना, अश्रु, हुंकार, गाना, जम्हाई लेना, संकोच होना, स्तम्भ आदि-आदि।

जिस प्रकार मानसिक स्तरों पर आत्मशक्ति की अनुभूतियां होती है ठीक चक्रों को साथ साथ बेधते हुये भी कुछ दैवी शक्तियों का आगरण होता है। भूत, भविष्य के ज्ञान की सामर्थ्य का आना किसी के मन की बातें जान लेना दूर देश में कहे शब्दों का सुन लेना आदि आदि।

इस का सारांश यही है कि इस प्राणशक्ति का अन्तर्मुखी प्रवाह भी भक्ति अथवा ब्रह्मविद्या है। और इसकी आत्मा में स्थिति ही योग है जो सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। स्पष्ट व सीधे शब्दों में सद्गुरु-कृपा ही समाधि है। आत्मज्ञान है। इस कृपा को छोड़कर अन्य उपाय करना मानो मृग का बालू को जल समझ कर पीने के लिये दौड़ने के समान ही है।

आत्मदर्शन के अभिलाषी जिज्ञासुओं से निवेदन है कि पहले सद्गुरु प्राप्ति की दृढ़ इच्छा हृदय में जागरित कर लें।

श्री सद्गुरुदेवजी के जन्म-दिवस पर पठित कविता का कुछ अंश :—

सादर-अभिनन्दन

[श्री राजपतिजी दुबे 'बालेन्दु' ए. एस. एम., फीरोजाबाद]

दिव्य देह वरवेश मनोहर, प्रिय दर्शन अभिराम हैं।
ऐसे प्रिय गुरुदेव तुम्हें हम, करते कोटि प्रणाम हैं॥

चन्द्राकार सांवरी रेखा शोभित उन्नत भाल पर।
धनुषाकार सुभग भौंहों पर बैठे ज्यों भौंरे सुंदर॥
लालायित हो उठते लोचन दरबस जिनको देखकर।
आनन्दित करता कानों को जिनका मंजुल मेघ स्वर॥
जिनमें प्रतिबिम्बित परमेश्वर, वासुदेव श्रीराम हैं।
ऐसे श्री गुरुदेव तुम्हें हम करते कोटि प्रणाम हैं॥

परम प्रसन्न प्रफुल्लित आनन, मंजुल मृदु मुस्कान है।
शब्द शब्द से झंकृत होता, जिनके तत्त्व-ज्ञान है॥
जिनके 'अजपाजप' सुमंत्र का, सुन्दर सुलभ विधान है।
जिनकी मुक्तिदायिनी करुणा, सब पर सहज समान है॥
योगेश्वर, श्री चन्द्रमोहन प्रिय जिनके पावन नाम हैं।
ऐसे सद्गुरुदेव तुम्हें हम करते कोटि प्रणाम हैं॥

रागातीत अखंड जितेन्द्रिय, वृत्ति सरल अविकार है।
त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ सूर्य सम जिनका यश विस्तार है॥
जिनकी बाल सुलभ वाणी में वेदों का शुभ सार है।
योग तत्त्व, परमात्म तत्त्व पर सम सुपूर्ण अधिकार है॥
जिनके श्री चरणों में जन-मन पाते नित विश्राम हैं।
ऐसे श्री गुरुदेव तुम्हें हम करते कोटि प्रणाम हैं॥

निजानुभूति

[श्री नेमीचन्दजी शर्मा]
सहायक विकास अधिकारी, सोरों

श्री गुरु पद नख मनिगन ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥

सन्त तुलसी की इस चौपाई को हृदय में धारण कर अपने हृदयांञ्चल में छिपाई हुई अपनी गुरु-प्राप्ति की कथा को सर्व भाइयों के लाभार्थ 'सिद्धियोग' में प्रकाशित करने भेज रहा हूं। यह घटना जो मेरे साथ घटी है शायद इससे भी विचित्र-विचित्र घटनायें मेरे अनेक गुरु-भाइयों के साथ घट चुकी होंगी परन्तु गुरुदेव की अहैतुकी कृपा से मेरे मन में इस के प्रकाशन की लहर रह-रह कर उठती है जो आज अपना साकार रूप प्राप्त करने जा रही है।

मैं सहायक विकास अधिकारी के वर्तमान पद पर उस समय बाह (जिला आगरा) विकास खण्ड में नियुक्त था। उस समय मेरा शरीर अनेक व्याधियों से ग्रसित था। बहुत उपचार कराने पर भी जब आशातीत लाभ नहीं हुआ तो एक दिन खिन्न मन अपने क्वार्टर में बैठा कुछ विचार कर रहा था। उसी समय मेरे एक मित्र श्री महाराज सिंह जैन जो वहीं पास ही रहते थे आए और उन्होंने मेरी दशा देख कर कहा कि आप एक मुसलमान सन्त की बताई हुई कुरान की आयत का जप करें। चालीस दिन बाद सिद्धि होने पर आपकी सब व्याधा दूर हो जावेगी। मैंने उनकी बताई हुई विधि के अनुसार कार्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि आपको इससे विशेष क्रोध पैदा होगा। यदि इसे सहन कर गए तो ठीक है अन्यथा यह जाप आपको हितकर न होकर नुकसानदायक भी हो सकता है। जब १७ या १८ दिन व्यतीत हुए तो मेरे मन में डर पैदा हुआ। भयानक-भयानक दृश्य दिखाई देने लगे, इसके बाद शरीर में गर्मी सी पैदा होकर क्रोध की मात्रा बढ़ने लगी। तीन-चार दिन और बीत जाने पर क्रोध की सीमा न रही। जरा-जरा सी बातों पर क्रोध आता तथा लोग मेरे स्वभाव में अचानक परिवर्तन देखकर हैरान होते थे। कभी-कभी अकेला खड़ा-खड़ा दीवारों से मारे क्रोध के सर

फोड़ने लगता।

विधि के विधान के अनुसार एक दिन अचानक मेरे दूसरे मित्र श्री चन्द्रकिशोर बाजपेयी मिले। उनसे मैंने अपनी छिपी हुई व्यथा कही तो उन्होंने सुनकर कहा कि आपने तो एक रोग निवारण के उपाय में दूसरा रोग और पाल लिया। खैर मैं आपको सही मार्ग बतला रहा हूं कि आप महा मृत्युञ्जय महा मन्त्र का जप ४० दिन करें। इससे आपका क्रोध एवं अन्य सभी व्याधियां दूर हो जावेंगी। साथ ही आपको भगवान् शंकर के दर्शन भी होंगे।

भगवान् शंकर के दर्शन की एकमात्र लालसा हृदय में छुपाकर मैंने उनको बताई गई विधि के अनुसार महा मृत्युञ्जय महामन्त्र का जाप भी शुरू कर दिया। लगातार २० दिन बीतने पर मेरा क्रोध तो बिल्कुल ही शान्त हो गया परन्तु शंकर जी के दर्शन की इच्छा पूर्ति न देखकर मेरे हृदय में अचानक बड़ी निराशा सी पैदा हुई और आंखों से रह रहकर आंसू बहते रहते। एक दिन निराश होकर सभी नियम छोड़ दिए। चारपाई बिछा कर सोना एवं दोनों समय भोजन प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया। प्रथम दिन जैसे ही चारपाई पर सोया तो शीघ्र ही एक नींद का झोंका सा आया। कानों में जोर से यह आवाज आई-क्या शंकरजी के दर्शन करना चाहते हो, मैंने भी कुछ जोर की आवाज में ही कहा कि चाहता तो हूं परन्तु दर्शन होते कहां हैं। इतना कहने पर फिर आवाज आई सामने देखो। मैंने सामने देखा तो क्या देखता हूं कि सामने एक महा तेजपुंज धारी महात्मा पद्मासन लगाए ध्यान में लीन बैठे हैं। कुछ समय तक यह दृश्य देखकर मेरी आंखें खुल गईं सामने कुछ भी नहीं था। पीछे जहां से आवाज आ रही थी मुड़कर देखा तो वहां भी कोई नहीं दिखाई दिया। चारपाई पर उदास मन बैठा-बैठा रात में यही विचार करता रहा कि यह भगवान् शंकर तो नहीं थे। उनके सिर पर जटायें, मुण्डमाल, गले में सर्पों की माल, सिर पर गंगाजी एवं ललाट पर चन्द्रमा है, इनके तो ऐसा कुछ भी नहीं था। आखिर जिनके दर्शन किए हैं वह कौन है? और कैसे इनके दर्शन हो सकेंगे? कहां पर इनकी प्राप्ति होगी?

कुछ समय बीतने पर मेरे एक मित्र श्री जगदीश प्रसाद ने कहा यदि आप मेरी बात मानें तो तहसील एटमादपुर के पास एक ग्राम सवाई है वहां पर एक महात्मा रहते हैं तुम उनके पास जाओ। वह आपको ऐसा मन्त्र बता देंगे जिससे आपके सभी कष्टों का निवारण हो जावेगा।

उसी समय अचानक मेरा तबादला बाह से खन्दौली हो गया जो एटमादपुर के पास ही है खन्दौली जाकर मैंने सवाई के एवं वहां पर रह रहे महात्मा के बारे में पूछताछ की तो लोगों ने कहा कि—भाई प्रशंसा तो हमने भी बहुत सुनी है, बड़े अच्छे योगी हैं। उनके दर्शन अवश्य करने चाहिए। इसी

समय गुरु पूर्णिमा का अवसर आ गया। लोगों ने कहा कि-वैसे तो वे अधिकतर बाहर ही रहते हैं परन्तु इस मौके पर अवश्य मिल जावेंगे। हृदय की पुकार को अनसुनी करना मेरे लिए असह्य हो गया। पूर्णिमा के दिन अपने दो मित्रों को साथ लेकर सवाई आश्रम को चल दिया। आश्रम पहुंचने पर—देखा कि कुछ व्यक्ति बैठे हैं। कीर्तन, भजन आदि का कार्यक्रम चल रहा है। अचानक प्रभुजी की गुफा के पास बनी छतरी के नीचे बैठे महात्मा पर मेरी दृष्टि पड़ी तो ... उस दिन रात के समय देखी मूर्ति साकार हो गई, हृदय में बार-बार याद कर मिलान करने पर भी जब कोई फर्क मुझे दिखाई नहीं दिया तो कहा कि उस दिन इनके ही दर्शन उस अज्ञात देव ने मुझे कराए थे। फिर प्रश्न किया कि क्या यही मेरे शंकर भगवान् हैं। इसी बीच मैंने महात्माजी के चरण स्पर्श किए। आगरे से ले जाए गए फल आदि भेंट किए। प्रसाद भी मुझे मिला। फिर धीरे से पूछा-कहो अल्मा कैसे आए? मैंने अपने हृदय के भाव छिपा कर कहा कि महाराज! मैंने आपकी प्रशंसा सुनी थी। दर्शन करने चला आया हूं।

मुझ से रहा नहीं जाता था। दर्शनों से तृप्ति नहीं होती थी। धीरज धारण कर कहा महाराज यदि आपको स्वीकार हो तो मैं भी दीक्षा लेना चाहता हूं। स्वीकृति मिल गई। उस दिन चन्द्र ग्रहण के कारण दीक्षा नहीं दी गई। दूसरे दिन श्रावण सुदी प्रतिपदा को गुरु-दीक्षा लेकर मैं सदा-सदा के लिए निहाल हो गया।

अब तक के दिखाई दिए महात्मा मेरे सद्गुरुदेव के रूप में परिवर्तित हो गए।

उसके उपरान्त अपने सद्गुरुदेव के प्रति जब-जब मेरे मन में कोई शंका पैदा हुई तो अचानक ध्यान की स्थिती बनी और मुझे अपने सद्गुरुदेव के दर्शन भगवान् शंकर जी के रूप में हुए। हृदय के सारे मैल धुल गए। शंकाओं को कोई स्थान ही नहीं रहा। मेरे हृदय में उनकी कृपा से ऐसा प्रेम का प्रवाह उमड़ा कि जिसे वाणी से व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है।

विधि का विधान विचित्र है। किस को कब क्या और कैसे मिल जाता है कोई नहीं जानता सद्गुरुदेव के पावन-चरणों की रज के प्रसाद से आज मैं परम सुखी हूं।

—×०×—

सम्पत्सु महतां चित्तं भवेदुत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्॥

महात्माओं का मन, सम्पत्ति प्राप्त होने पर कमल की तरह कोमल अर्थात् अत्यन्त दयार्द्र हुआ करता है और विपत्ति के समय बड़े पर्वत की चट्टानों की तरह अत्यन्त कठिन अर्थात् सहन करने की शक्ति वाला हुआ करता है।

—भर्तृहरि

योगेश्वर चरित्र माला

[श्री प्रभुजी की काश्मीर-यात्रा]

यस्मिन्देशेवसेद्योगी ध्यान योग विचक्षण।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः किम्पुनस्तस्य बान्धवाः॥

जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है और उसके भाई-बन्धुओं का तो कहना ही क्या है। महापुरुष जिस स्थान पर वास किया करते हैं उस स्थान का अणु-अणु तक दिव्य बन जाता है। वहाँ के वातावरणसे सभी नर-नारी पवित्र होते रहा करते हैं। वहाँ पर योगी आत्म-तेज के परमाणु सदा-सर्वदा के लिए व्यापक होकर रहा करते है जो उस वातावरण में आकर बैठता है वह वहाँ से स्वतः ही शिक्षा प्राप्त किया करता है। उसका मन अपने आप ही समाहित होने लगता है। एक बार योग-योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलालजी महाराज ने काश्मीर में श्रीनगर की यात्रा की। कौन कह सकता है कि महापुरुष कौन से दृष्टि-कोण से क्या काम किया करते हैं। संसार में जन्म लेने के बाद उनका अपना कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता प्रत्युत "परोपकाराय सतां-विभूतयः" के कथनानुसार उनके अपने शरीर की एक-एक चेष्टा परहित में सनी रहती है। उनका खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना और जागना रहस्यमय होता है। श्री प्रभुजी काश्मीर पहुंच गये। सत्संग चलने लगा। सत्संगियों का यातायात शनैः-शनैः बढ़ने लगा। एक दिन अकस्मात् एक घटना घटी। श्री प्रभुजी के दाहिने बाजू में अकस्मात् एक दर्द सा पैदा हुआ, और थोड़ी देर बाद मालूम पड़ने लगा कि उनकी दक्षिण भुजा कन्धे से अलहदा हो गई है। अकस्मात् यह घटना देख कर लोगों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। और उन सभी सत्संगियों ने विनयपूर्वक पूछा कि - हे प्रभो! यह क्या बात है। अकस्मात् आप को यह क्या हो गया है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कोई खास बात नहीं है केवल मात्र तुम किसी बाजू चढ़ाने वाले को बुलाओ जिससे वह हमारे इस बाजू को यथा स्थान चढ़ा दे और उसके बाद में, सामयिक उपचार के साथ इसको सन्धि स्थान से बांध दें जिससे बाजू में किसी प्रकार की कमी न रह जावे।

प्रभुजी की आज्ञानुसार सब काम किये गये, बाजू चढ़वा कर बैंधवा दिया गया। किन्तु लोगों के मन में यह बड़ा भारी आश्चर्य था कि यह हुआ तो क्या हुआ। इस प्रकार की घटना आज तक देखने में नहीं आई कि बैठे-ही-बैठे किसी का बाजू उतर गया हो। लोग कुछ कह नहीं सकते थे, किन्तु मूक भाषा में सब-के-सब यह कह भी रहे थे कि यह कृपानिधान कृपा करके इस घटना के रहस्य को किसी प्रकार से समझा दें। अन्ततः लोगों से नहीं रहा गया। उन्होंने विनयभाव से यह प्रार्थना कर ही डाली, कि प्रभो! कृपा कर इस घटना का रहस्य यथार्थ में बतला दें। यह अनोखी बात क्या है? ऐसा हुआ तो क्यों हुआ, कैसे हुआ? श्री प्रभुजी ने उनकी सच्ची जिज्ञासा को जानकर और विनय को सुन करके उत्तर दिया कि—भाई बात तो बहुत बड़ी नहीं है, हमारा एक बच्चा जो अधिकांश हमारे साथ ही रहा करता है जिसका नाम मुलखराज है, वह हमारे ही चिन्तन में हर समय विलीन रहता है, आज वह अमृतसर में तीन मंजिले मकान से नीचे गिर गया है उसका दहिना बाजू जिन्दगी भर के लिए टूटा रहना था किन्तु हमारे नेम में ओत-प्रोत रहता है इसलिए उसके बाजू का प्रभाव हमारे बाजू पर ही पड़ गया है। उसका यह भुगतान दो या तीन दिन में यहां भुगत जायेगा और वह पूरी तरह जिन्दगी भर को स्वस्थ रहेगा। वहाँ के सरसंगियों ने श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से यह बात सुनकर श्री मुलखराजजी के पिताको एक आवश्यकीय तार दिया और उनसे पूछा कि आपका लड़का मुलखराज आज-कल में तिमंजिले मकान से गिर गया है। अब उसकी क्या स्थिति है। श्री मुलखराज के पिताने तार का उत्तर दिया कि—हाँ मेरा पुत्र मुलखराज रामा मार्केट में तीन मंजिले मकान से नीचे गिर गया है किन्तु उसको किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है। उसके दाहिने बाजू में थोड़ा-सा दर्द है वह कहता है कि उसके गुरु-देवने दया करके जमीन पर गिरने से पहले ही ऊपर-ही-ऊपर सम्भाल लिया है। तार के इस जवाब को पाकर श्रीनगर-काश्मीर के सत्संगियों को और भी बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि अपने प्यारे बच्चे श्री मुलखराज के कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने शरीर पर ले लिया। ऐसी घटनायें, ऐसे चरित्र कभी-कभी सुनने में तो आया करते थे किन्तु वह कर्ण परम्परा से सुनी बातें यथार्थ में विश्वसनीय नहीं थीं। आज इस घटना को देख करके सभी को आश्चर्य हो गया कि 'कर्तुमकर्तुं मन्यथा कर्तु' की शक्ति वाले महापुरुष सभी कुछ कर लिया करते हैं। इस घटना के बाद काश्मीर में प्रचार की और भी धूमधाम मचने लगी। सबके मन में अगाध विश्वास जम गया कि यह कोई साधारण महापुरुष नहीं प्रत्युत परिपूर्णतम योगिराज है।

खेचरी का प्रभाव

[श्री हीरालालजी शास्त्री, फर्रुखाबाद]

स्वरूप :—

कपाल कुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥

(—हठयोग दीपिका)

सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर शान्त मन युक्त साधक दोनों भृकुटियों के मध्य में निश्चल दृष्टि स्थिर करके सिद्धासन (वज्रासन) से सीधा बैठकर जीभको ऊपर उठाकर उल्टी करके तालु के छिद्र में यत्नपूर्वक संयुक्त कर प्राण वायु को स्थिर करे यही खेचरी मुद्रा है।

शिव संहिता :—

भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं विधाय सुदृढां सुधीः।
उपविश्यासने वज्रे नानोपद्रव वर्जितः॥२॥
लम्बिकोर्ध्वं स्थिते गर्ते रसनां विपरीतगाम्।
संयोजयेत् प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः॥३॥
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः।
सिद्धिनां जननी ह्येषा मम प्राणाधिकाप्रिया॥४॥
निरन्तर कृताभ्यासात् पीयूषं प्रत्यहं पिबेत्।
तेन विग्रह सिद्धिः स्यात् मृत्युमातङ्ग केसरी॥५॥

श्री शङ्कर जी के कथनानुसार यह मुद्रा सर्व सिद्धियों को देने वाली है अर्थात् इस मुद्रा के सिद्ध होने पर अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। निरन्तर अभ्यास करने से तालु छिद्र से चंकित अमृतपान करने से शरीर सिद्ध अर्थात् मृत्यु स्वरूप हाथी के लिये सिंह के समान हो जाता है।

विशेष गुण :—

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धं मपि तिष्ठति।
विषैर्विमुच्यते योगी व्याधिमृत्यु जरादिभिः॥६॥

फल :—

न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥७॥

अर्थात् :—

पीड्यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।
बाध्यते न च कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥८॥

जीभ को ऊपर करके जो साधक आधे क्षण भी स्थिर हो सके वह विष, रोग, मृत्यु, बुढ़ापे से मुक्त हो जाता है। उसको रोग, मरण, तन्द्रा, निद्रा, भूख, प्यास, मूर्च्छा आदि कोई भी कष्ट नहीं हो सकते हैं

अर्थात्:— रोग से पीड़ित होना, कृत कर्मों से लिप्त होना, काल से कवलित होना आदि सभी दुःख खेचरी ज्ञाता को नहीं होते हैं।

तथा :—

खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः।
न तस्यक्षरते बिन्दुः कामिन्या श्लेषितस्य च॥९॥

खेचरी के सिद्ध होने पर लम्बिका के ऊपर छिद्र जीभ से ढक लेने पर स्त्री द्वारा आलिंगन करने पर भी योगी के वीर्य का बिन्दु भी स्खलित नहीं हो सकता है।

और भी कदाचित वीर्य स्खलित होकर स्त्री के योनि-मण्डल तक पहुंच जाने पर भी योनि मुद्रा से निबद्ध करे शक्ति-द्वारा आकर्षण करने पर ऊपर को लौट आता है।

उक्तञ्च :—

चलितोऽपि यदाबिन्दु सम्प्राप्तो योनिमण्डलम्।
व्रजत्यूर्ध्वं हृतः शक्त्या निबद्धो योनि मुद्रया॥१०॥

तथा च :—

ऊर्ध्व जिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोतियः।
मासार्द्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित्॥११॥

विशेषता :—

नित्यं सोमकण पूर्णं शरीर यस्य योगिनः।
तद्द केनापि दृष्टस्य विषं तस्य न सर्पति॥१२॥

जिस योगी का शरीर नित्य सोम कला से पूर्ण रहता है उसको तक्षक सर्प भी डस ले तब भी उसका विष शरीर में नहीं फैलता है। और भी :—

इन्धनानि यथा वन्हिस्तैल वर्तिं च दीपकः।
तथा सोम कला पूर्ण देही देहं न मुञ्चति ॥१३॥

जैसे अग्नि ईंधन को और दीपक तेल और बत्ती को नहीं छोड़ता है इसी प्रकार जीवात्मा सोम कलापूर्ण शरीर को भी नहीं छोड़ता है। नाम करण :—

चित्तं चरति खे यस्मात् जिह्वा चरति खेगता।
ते नैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धैर्निरूपिता ॥१४॥

इसमें चित्त भृकुटि मध्य के आकाश में स्थिर होता है और सोम भी भृकुटि मध्य में ही जाकर विचरती है। इस कारण इस मुद्रा का नाम भी सिद्ध योगियों ने खेचरी कहा है। इन्हीं कारणों से सिद्धों ने उस योगी को विशेषता बतलाई है।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमर वारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये चेतरे कुल घातका ॥१५॥

प्रतिदिन गोमांस भक्षण करने वाले और अमर वारुणी का पान करने वाले योगी को कुलीन (उच्च कुलोत्पन्न) और अन्यों को कुल घातक (वर्णसङ्कर) सिद्धयोगी मानते हैं

गोमांस अमर वारुणी का पारिभाषिक अर्थ:—

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशोहितालुनि।
गोमांस भक्षणं तत्तु महा पातक नाशनम् ॥१६॥
जिह्वा प्रवेश सम्भूत वन्हिनोत्पादितः खलु।
चन्द्रात् स्रवति यः सारः सस्यादमर वारुणी ॥१७॥

गोशब्द का अर्थ जीभ और उसका तालु में प्रवेश ही भक्षण है जिह्वा के तालु में प्रवेश अग्नि ऊष्मा से जो सार झरता है उसे अमर वारुणी कहते हैं खेचरी सिद्ध योगी के लिये यही गोमांस भक्षण और अमर वारुणी पान सत्कुलत्वद्योतक है। प्रभाव ब्रह्मवैवर्तपुराण का वचन है कि :—

कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलञ्च तत् ।
जायते योगवान् यत्र दत्त मक्षय्यतां व्रजेत् ॥१८॥
दृष्टः सम्भाषितः स्पृष्ट पुंप्रकृत्योर्विवेकवान् ।
भव कोटि शता पातं पुनाति वृजिनं नृणाम् ॥१९॥

जिस कुल में योगवान पुत्र उत्पन्न होता है उसके माता, पिता और वह देश तथा कुल धन्य है जहाँ योगवान् पुरुष पैदा हो इस प्रकार का प्रकृति पुरुष का ज्ञानी योगी दर्शन, सत्कार, स्पर्श मात्र से ही मनुष्यों को करोड़ों जन्मों के पातकों से पवित्र कर देता है और उसके लिये दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है।

ब्रह्माण्ड पुराण :—

गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थ शतेन च।
ब्रह्मचारि सहस्रेण योगाभ्यासी विशिष्यते ॥२०॥

हजारों गृहस्थ, सैकड़ों वानप्रस्थ, हजारों ब्रह्मचारियों की अपेक्षा भी वह योगी विशेष माना जाता है।

राजयोगे वासदेव प्रतिज्ञितवाक्यम् :—

राजयोगस्य माहात्म्यं को विजानति तत्त्वतः ।
तज्ज्ञानी वसते यत्र सदेशः पुरुषं भाजनम् ॥२१॥
दर्शनादर्चनात् यस्य त्रिसप्त कुल संयुताः ।
अज्ञा मुक्ति पदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः ॥२२॥
अन्तर्योगं बहियोगं योजानाति विशेषतः ।
त्वया मयाप्यसौ वन्द्यः शेषैर्वन्द्यस्तुकिं पुनः ॥२३॥

वास्तव में राजयोग के माहात्म्य को तत्त्व से कौन जानता है। उसका ज्ञाता योगी जिस प्रदेश में निवास करता है वह देश पुण्यभाजन (तीर्थस्थान है) उसके दर्शन-पूजन मात्र से अन्य पुरुष २१ पीढ़ी तक मुक्ति प्राप्त करते हैं फिर उस योग-परायण साधक के लिये क्या कहा जाय। अन्तर्योग, बहिर्योग को जो विशेषतया जानता है वह योगी तुम्हारे और हमारे द्वारा भी वन्दनीय है अन्य सबों द्वारा वन्दनीय होने के लिये क्या कहा जाय।

कूर्म पुराणे :—

एक कालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेववा।
ये युञ्जन्ते महायोगं विद्यते यास्ते महेश्वराः ॥२४॥

एक बार, दो बार व तीन बार अथवा नित्य जो महायोग का अभ्यास करते हैं वह साक्षात् महेश्वर (शिव) ही हैं योग इन वचनों से उत्तम है।

विशेष प्रभाव :—

चुम्बती यदि लम्बिकाग्र मनिशं जिह्वा रसस्यन्दिनी।
सक्षारा कटुकाम्ल दुग्ध सदृशी मध्वाज्य तुल्या तथा॥
व्याधीनां हरणं जरान्त करणं शस्त्रागमोदीरणम्।
तस्यस्यादमरत्व मष्ट गुणितं सिद्धाङ्गना कर्षणम्॥२५॥

क्षार, कटु, अम्ल, दुग्धादि रस के सदृश तथा शहद घी के तुल्य भी निरन्तर रस का स्यन्दन करने वाली जीभ यदि निरन्तर लम्बिकाग्र भाग का चुम्बन (स्पर्श करने) वाली हो तो रोग हरण, जरा निवारण शस्त्रों का सम्मुख आने का निवारण करती है तथा अष्ट प्रकार की ऐश्वर्य सिद्धि प्रदान करती है इसी प्रकार सिद्धों की कामिनियों का आकर्षण भी करती है।

मूर्ध्नः षोडशपत्र पद्मगलितं प्राणादवाप्तं हठात्।
अर्ध्वास्यो रसनां नियम्य विवरे शक्तिं परां चिन्तयन्॥
उत्कल्लोल कला जलञ्च विमलं धारामयं यः पिबेत्।
निर्व्याधिः स मृणाल कोमल वपुर्योगी चिरंजीवति॥२६॥

जो योगी जिह्वा को कपाल छिद्र में लगाकर और ऊपर को मुख करके परम शक्ति कुण्डलिनी का ध्यान करता हुआ प्राणवायु के साधन और हठयोग से प्राप्त १६ पत्रों वाले कमल के ऊपर, उस पर मस्तक से गिरा निर्मल धारा रूप तथा ऊपर को तरंग वाले चन्द्र कलाके जल को पीता है वह रोग रहित मृणाल के समान कोमल शरीर वाला चिरकाल पर्यन्त शरीर धारण करता है।

खेचरी मुद्रा ही विशेषतया शरीर सिद्धि का मुख्य साधन है।

प्रमाण :—

अत्राखेयं प्रहित सुषिरं मेरु मूर्धान्तरस्थम्।
तस्मिंस्तत्त्वं प्रवदति सुधीस्तन्मुखं निम्नगानाम्॥
चन्द्रात् सारः स्रवति वपुषस्तेन मृत्युर्नराणाम्।
तद्वध्नीयात् सुकरणमथो नान्यथा योगसिद्धिः॥२७॥

सर्वोच्च मेरु के समान मूर्धान्तरस्थ सोम कला जल स्थित छिद्र में शुद्ध बुद्धि योगी आत्म तत्त्व बतलाते हैं (तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा स्थितः) इति श्रुति प्रमाण से गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा शब्द वाच्य इड़ा पिंगला गांधारी आदि सोम स्रवण स्थान में चन्द्रमा से जो शरीर का सार क्षरता है उस चन्द्र सारक्षरण से मनुष्यों की मृत्यु होती है इस कारण योगी को सुकरण (खेचरी मुद्रा स्वरूप) को बांधें जिससे कि शरीर की सिद्धि रूप सौन्दर्य बल वज्र सहनन रूप सिद्धि हो अन्यथा दूसरे साधन से देह सिद्धि को वह नहीं कहते हैं इसीलिये खेचरी सिद्धि आवश्यक है।

सुषिरं ज्ञान जनकं पञ्च स्रोतः समन्वितम्।
तिष्ठते खेचरी मुद्रा तस्मिन् शून्ये निरंजने॥२८॥

इड़ादि नाड़ियों के पाँच प्रवाह अन्य छिद्र ज्ञान का उत्पादक है (अर्थात् आत्मा का प्रत्यक्ष कारक है) उस निरञ्जन (अर्थात् शोक मोह रहित) शून्य स्वरूप में खेचरी मुद्रा स्थिर होती है (अर्थात् खेचरी की महिमा से ही उस छिद्र में मन प्रवेश होने से आत्म-ज्ञान होता है।

इत्यादि विशेषताओं के कारण ही खेचरी का योग में सर्वोच्च प्रभाव है।

उपसंहार :—

एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी।
एको देवो निरालम्बो एकावस्था मनोन्मनी॥२९॥

योग साधनमें :—यह चार ज्ञान अत्यावश्यक होने के कारण एक (मुख्य) बताये हैं एक सृष्टिमय बीज (ॐ) और एक मुद्रा खेचरी तथा आलम्बन रहित एक मुख्य परमात्मा और मनोन्मनी अवस्था भी एक ही है इत्यादि कारणों से योग सिद्धि में खेचरी का प्रभाव विशेष महत्त्व रखता है पाठकों को इसके अध्ययन से कुछ भी लाभ हो सका तो भविष्य में फिर कभी इसके विशेष साधन आदि पर प्रकाश डालकर सेवा की जायगी।

स्त्रियां और दीक्षा

(पृष्ठ ८ से आगे)

तौ निनाय महा पुण्यं
कालिंदास्तटमुत्तमम्।
तत्र पुण्य तरोर्मूले
निषण्णोऽथ गुरु स्वयम्।
पुण्य तीर्थ जले स्नानं
राजानं समुपोषितम्।
प्राङ् मुखं चोपवेश्याथ
नत्वा शिव पदांबुजम्॥
तन्मस्तके करं न्यस्य
ददौ मंत्रं शिवात्मकम्॥

अर्थात् हे प्रभो! आप मुझे शैवी विद्या का उपदेश करें। जिसके प्रभाव से मेरे ज्ञात व अज्ञात सभी पाप नष्ट हो जांय। राजा के इस प्रकार प्रार्थना करने पर ब्राह्मण श्रेष्ठ गर्ग जी ने उस राजा को परम पुण्यमयी कालिन्दी के तट पर ले जाकर के और उत्तम पुण्य वृक्ष पीपल के नीचे बिठाकर व स्वयं बैठकर व्रत किये। राजा को तीर्थ जल से स्नान करा कर पूर्वाभिमुख बिठाकर एवं भगवान शिव के चरणों में प्रणाम करा करके उस राजा के मस्तक पर अपना हाथ रखकर शिवात्मिका पंचाक्षरी विद्या का उपदेश दिया :—

तन्मंत्र धारणादेव
तद्गुरोर्हस्त संगमात्।
निर्ययुस्तस्य वपुषो
वायसाः शतकोटयः॥
ते दग्ध पक्षाः क्रोशंतो
निपतंतो महीतले।
भस्मी भूतास्ततः सर्वे
दृश्यन्ते स्म सहस्रशः॥
दृष्ट्वा तद्वायस कुलं
दह्यमानं सुविस्मितौ।
राजा च राज महिषी
तं गुरुं पर्य पृच्छताम्॥
भगवन्निदमाश्चर्यं
कथं जाबं शरीरतं।
वायसानां कुल दृष्टं
किमेतत्साधु भण्यताम्॥

गर्ग जी के मंत्र उपदेश करने से और सिर पर हाथ रख कर शक्ति पात करने से उस राजा के शरीर से करोड़ों की संख्या में कौवे निकले और उनके पंख जल जाने के कारण वे सब जमीन पर गिर-गिर कर भस्म हो गये। इस दृश्य को देखकर राजा और रानी अति विस्मित हुए। और विनय-पूर्वक गुरुदेव गर्ग जी से पूछा कि इतने कौवे मेरे शरीर से कैसे पैदा हुए और निकल-निकल कर भस्म कैसे हो गये हैं। इसके बाद श्री गर्ग मुनि जी बोले :—

राजन्भव सहस्रेषु
भवता परिधावता।
सन्चितानि दुरन्तानि
संति पापान्येकशः॥
तेषु जन्म सहस्रेषु
यानि पुण्यानि संति वै।

तेषामाधिक्यतः क्वापि
जायते पुण्य योनिषु ॥
तया पापीयसी योनिं
कश्चित्पापेन गच्छति।
साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव
मानुषीं योनि माप्तवान् ॥
शैवी पंचाक्षरी विद्या
यदा ते हृदयं गता।
अघानां कोटयस्त्वत्तः
काक रूपेण निर्गता ॥
कोटयो ब्रह्म हत्यानाम
गम्यागम्य कोटयः।
स्वर्णस्तेय सुरापानं
भ्रूण हत्यादि कोटयः ॥
भव कोटि सहस्रेषु
येऽन्ये पातक राशयः।
ऋणाऽस्मी भवंत्येव
शैवे पंचाक्षरे धृते ॥
आसंस्तवाद्य राजेन्द्र
दग्धा पातक कोटयः।

गुरुदेव ने उत्तर दिया हे राजन ! हजारों जन्मों में घूमते हुए तूने जो हजारों पाप कमाये थे और उनमें से हजारों जन्मों में पुण्य इकट्ठे किए थे। उनके फल स्वरूप कभी तुम्हारा जन्म पुण्य योनि में हुआ और कभी पाप योनि में हुआ। अब पाप और पुण्य के बराबर हो जाने पर तुमने मनुष्य योनि प्राप्त की है और मनुष्य योनि प्राप्त कर लेने पर और शैवी पंचाक्षरी विद्या को हृदयंगम कर लेने पर करोड़ों पाप कार्यों के रूप में तेरे शरीर से निकल गये। करोड़ों ब्रह्म हत्यायें अगम्यागमन, स्वर्णचोरी, शराब पीना और गर्भ-हत्याओं के करोड़ों प्रकार के पाप इसके अतिरिक्त अनेक जन्मों की पाप राशियें इस शैवीविद्या के प्रभाव से तेरे शरीर से निकल गये। और करोड़ों पातक जलकर भस्म हो गये।

दम्पति को गुरुदेव की आज्ञा

अनया सह पूतात्मा,
विहरस्व यथा सुखम्।
इत्याभाष्य मुनि श्रेष्ठस्तं
मंत्र मुपदिश्य च ॥
तस्मां विस्मित चिन्तास्यां
सहितः स्व ग्रहं ययौ।
गुरुवर्य मनुज्ञाप्य
मुदितौ तौ च दम्पति ॥
तत स्वभवनं प्राप्य
रेजतुः स्म महाद्युति।
राजा दृढं समाश्लिष्य-
पत्नी चन्दन शीतलाम् ॥
संतोषं परमं लेभे
निः स्वः प्राप्य यथा धनम्।

अर्थात् हे राजन ! अब तुम पूतात्मा हो, अतः अब तुम इस अपनी सहधर्मिणी के साथ यथा सुख विहार करो। यह कहकर वह मुनिश्रेष्ठ गये उस विस्मित दम्पति के साथ अपने आश्रम को चले गये और वह दोनों राजा व रानी श्री गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त कर अपने राजमहल में आकर परमाह्लादित

होकर बड़ी दिव्य आभा के साथ मुक्त हो गये। राजा दशार्ह ने घर आकर अपनी नवयुवती का दृढ़ आलिंगन किया तो वह अब चन्दन के समान शीतल लगी—उसको इस प्रकार की पाकर राजा को परम सुख हुआ जैसे कंगले को अपना खोया हुआ धन मिल गया हो।

इस कथा के अन्दर शक्तिपात दीक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व समझाया गया है। सद्गुरु के शक्तिपात से अथवा दीक्षा दे देने पर अवश्य ही शिष्यों के पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं। आज कल इस घोर कलिकाल के समय में भी जहाँ पर पूर्ण सामर्थ्यवान् गुरु होते हैं और उनसे लोग शास्त्रोक्त दीक्षा प्राप्त करते हैं तो उन लोगों के घरों में सद्गुरु-शक्ति के प्रभाव से अनेक चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं।

शक्तिपात की एक आश्चर्यप्रद घटना

जिला आगरा के पवित्रतम सकोंई ग्राम में एक अच्छी दम्पति निवास करते थे। दे दोनों पवित्र भक्तात्मा थे। उन्होंने अपने पवित्र आश्रम योग प्रशिक्षण केन्द्र और सिद्ध गुफा से दीक्षा प्राप्त की थी। श्री गुरुदेवजी से शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद दोनों पति-पत्नी हर समय प्रभु-चिन्तन में मगन रहने लगे। उनका पवित्र नाम डा० मवासीराम व उनकी धर्मपत्नी का नाम भगवतीदेवी था भगवतीदेवी अधिकाधिक समय ध्याना-भ्यास करने में देती थी और उसके पतिदेव भी ध्याना‌भ्यास करते थे। भगवतीदेवी को अपने अभ्यास का समय अधिक मिलता था। पर उसके पतिदेव गृह कार्य में अधिक व्यस्त रहते थे। इसलिए पत्नी का अभ्यास उत्तरो-त्तर बढ़ गया। वह देवी प्रभुजी के चिन्मय स्वरूप में हर समय लीन रहने लगी। श्री गुरुदेवजी ने उसको आज्ञा दी थी कि तुम नित्य अपने पतिदेव की परिक्रमा किया करो और चरणामृत लिया करो। श्री गुरुदेव की आज्ञा मुताबिक उसने वैसा ही किया। किन्तु परिणाम दिनों दिन खराब होता गया। उसके पतिदेव बीमार हो गये। और किसी भी उप-चार से कोई भी लाभ नहीं हुआ। अन्त में श्री गुरुदेव की चरण-शरण में जाकर के सौभाग्य-वती भगवती देवी ने विनय पूर्वक पूछा कि महाराज जी इनकी जीवन रक्षा का कोई उपाय कृपा करके बताओ। भगवती देवी की विनय करने पर श्री गुरुदेव जी ने गम्भीरता को समझ कर आज्ञा दी कि देवी अब कुछ समय के लिए तुम अपने पतिदेव का न चरणा-मृत लो न परिक्रमा करो न प्रणाम करो। हृदय में प्रेम रक्खो। विनयशुक्त रहो आदर का भाव रखो किन्तु अभी कुछ समय चरणा मृत आदि न लो भगवती देवी ने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा को मान कर वैसा ही किया। जिस दिन से उसने पतिदेव का चरणामृत छोड़ दिया उसी दिन से उसके पतिदेव का स्वास्थ्य सुधरने लगा। और वह बहुत ही थोड़े दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गये। श्री गुरुदेव ने प्रसाद देकर उनकी ध्यान-स्थिति को भी बढ़ा दिया। इस प्रकार मवासीराम की ध्यान-स्थिति बढ़ जाने पर दोनों पति-पत्नी एक ही नित्य चेतन स्वरूप में लीन रहने लगे। उपरोक्त लेख से ये भली प्रकार स्पष्ट हो गया कि दीक्षा का कितना महत्व है और स्त्री-पुरुष सभी का सामान्य रूप से दीक्षा लेने का पूरा-पूरा अधिकार है।

लाडवा जिला करनाल में योग-प्रचार

परम पूज्य श्री गुरुदेवजी अपने दो मास के एकान्तिक कार्यक्रम के अन्तर्गत ही लाडवा जिला-करनाल के अपने सत्संगी बच्चों के विशेष आग्रह से लाडवा गये और ता० ३-९-७० से १२-९-७० तक वहाँ पर धूमधाम से योग-प्रचार का कार्यक्रम चला। एक सप्ताह के कार्यक्रम में श्री गुरुदेवजी ने वैराग्य-प्राप्ति के आन्तरिक साधनों का विशेष वर्णन किया और श्रोताओं से आग्रह किया कि वह सब-के-सब अन्तर्मुख होकर ऐहिक एवं स्वर्गीय विषयों से वितृष्ण होते हुए पुरुषकृपाति रूप पर वैराग्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। यही निःश्रेयस सिद्धि का प्रमुख साधन है। लाडवा में इस योग-प्रचार के समय में वहाँ के प्रमुख सत्संगी लाला साधूराम, लाला रतनलाल चौधरी, विश्वम्भर हकीम, पं० हंसराज एवं लाला बृजमोहन आदियों का उत्साह बहुत ही सराहनीय था।

हिन्दू उच्चतर विद्यालय में भाषण

श्री गुरुदेवजी अपने इस योग-प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत ही श्री मुन्नीलाल बंसल के आग्रह पर उनके नव निर्मित विद्यालय को देखने गये। इस विद्यालय को देखकर श्री गुरुदेवजी के मन में बहुत ही प्रसन्नता हुई। लाडवा निवासियों का यह एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ है और उसमें भी विशेषतः लाला मुन्नीलाल बंसल एवं एक पूर्ण त्यागी महात्मा संन्यासी जो उस स्कूल में ही निवास करते हैं उनका उत्साह बहुत ही प्रेरक व सराहनीय है। यद्यपि विद्यालय में जाने पर श्री गुरुदेवजी से महात्माजी की कोई भेंट नहीं हुई। किन्तु फिर भी कर्ण परम्परा से उनके यश को सुनकर श्री गुरुदेवजी का हृदय बार-बार आह्लादित होता था। महात्माजी चार घरों से भिक्षा लेकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं और इस विद्यालय की उन्नति के लिए पूरे प्रयत्न के साथ लगे रहते हैं। श्री गुरुदेवजी को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि दो या तीन वर्ष पहले यहाँ एक पुराने गन्दे पानी का तालाब था। इसको मिट्टी से पूरा करके यहाँ इस विद्यालय की स्थापना की गई। विद्यालय के प्रमुख अध्यापक एक उत्साही नवयुवक थे, जिनका जीवन आदर्श उज्ज्वल एवं सदाचारमय भासित हो रहा था। विद्यालय के प्रमुख कार्य-कर्ताओं के आग्रह से वहाँ पर श्री गुरुदेवजी ने एक भाषण दिया जिसमें बालक-बालिकाओं के और अध्यापकों के चरित्र-निर्माण पर विशेष प्रकाश डाला। लाडवा के इस कार्यक्रम के बाद अपने एक सत्संगी बच्चे के आग्रह से उनके पौत्र के नामकरण-संस्कार के अवसर पर आप चण्डीगढ़ गये तथा पुनः लौटकर ऋषिकेश आ गये।

सचित्र योगासन व उनसे लाभ

एक पाद शिरासन

विधिः— एक पैर उठाकर अपनी ग्रीवा पर शिर से कुछ नीचे की ओर रख लीजिये और दोनों हाथ सामने जोड़े रखिये या पहले पहल अभ्यास के समय पर न रुक सके तो उसे स्कन्ध पादासन की तरह दोनों हाथों से पकड़ कर भी रोका जा सकता है।

समयः— शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये।

लाभः— इस आसन के करने से ग्रीवा अंघा जानु भाग आदि के स्नायुओं पर काफी तनाव पड़ता है व उसमें रक्त संचार

उचित मात्रा में ठीक-ठीक गति से करने लगता है। यकृत प्लीहा अपनी यथार्थ स्थिति में अपना कार्य करते हैं। पेट बहुत हल्का रहता है।

द्विपाद शिरासन

विधिः— अपने दोनों पैर क्रमशः धीरे-धीरे से उठाकर अपनी गर्दन पर शिरोभाग के निकट रख लीजिये व अपने हाथ छाती पर लाकर सामने की ओर जोड़े रहें व सीधे बैठ रहें। इसी का नाम द्विपाद शिरासन है।

लाभः— इस आसन के करने से ग्रीवा जानु भाग आदि के स्नायुओं पर काफी तनाव पड़ता है व उनमें रक्त संचार उचित मात्रा में ठीक ठीक गति से होने लगता है। यकृत प्लीहा अपनी यथार्थ स्थिति में अपना कार्य करते है। पेट बहुत हल्का रहता है।

मण्डूकासन

पृष्ठ देशे पाद तलावङ् गुष्ठे द्वे च सस्पृशेत्।
जानु युग्मं पुरस्कृत्य साधे यन्मण्डुकासनम्॥

विधिः— दोनों पैरों को मोड़कर पाद तलों को इस प्रकार पीछे ले जाँय कि उनके अंगूठे परस्पर मिल जांय। ऐसी स्थिति हो जाने पर पाद तलों पर बैठ जाँय। सामने दृढ़ता के साथ फैले हुए अपने दोनों हाथों को सीधा रख कर दृढ़ता से बैठ जांय।

समयः— साधारण शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें।

लाभः— इस आसन के अभ्यास से अपान वायुका ऊर्ध्वाकर्षण होता है। अश्वनी मुद्रा के ढंग में गुदा का आकुंचन प्रसारण भी अनायास ही हो सकता है। अतः यह आसन देहाग्निवर्धक एवं शरीर लाभप्रद देने वाला है।

उत्तान मण्डूकासन

मण्डुकासन मध्यास्य कपोराभ्यो धृतं शिर।
भवेन्देकम इतान मेत युत्तान मण्डुकम्॥

विधि:— मण्डूकासन लगाकर अपने हाथ की कोहनियों को परस्पर भुज दण्ड पकड़े हुए शिर पर रख ले अर्थात् बांये हाथ से दाहिने हाथ की व दाहिने हाथ से बांये की कोहनी को पकड़ कर शिर पर जमा कर रख ले इस प्रकार दोनों हाथों को शिर पर जमा लेने से मेढ़क के तैरने जैसी आकृति बन जायेगी। अत: इस आसन का नाम उत्तान मण्डूक आसन है।

लाभ:— फेफड़ों कुम्भक के साथ अथवा वैसे ही शरीर के सन्तुलन से पानी में तैरने की शक्ति बढ़ती है।

आजा आजा रे साँवरिया।

[श्री ईश्वरी प्रसाद खरे, झाँसी]

मन-मन्दिर को स्वच्छ किया है आकर नाथ सजाओ।
जगमग-जगमग अन्तरतम हो ऐसी ज्योति जगाओ॥
मुझको आस तुम्हारी।

सुबह-शाम नित लगा के आसन श्री चरनन को ध्याऊँ।
होते पुलकित रोम रोम में सत्-चित् आनन्द पाऊँ॥
तुम पर मैं बलिहारी।

योग-योगीश्वर सद्गुरु मेरे योग-सुधा बरसाओ।
कृत-कृत होवे जन-साधारण प्रेम-लहर बरसाओ॥
दैन तेरी प्रभु न्यारी।

सिद्धों के अधिराज इदेश्वर आशिष तेरा पाऊँ।
जनम-जनम तक हे लोकेश्वर! महिमा तेरी गाऊँ॥
तुम हो मंगलकारी।

आश्रम-समाचार :— हमारे विशेष प्रतिनिधि द्वारा :—

मुरादाबाद में स्थापना-उत्सव

मुरादाबाद के सुप्रसिद्ध हाथी वाले मंदिर के आनन्दकन्द योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी का श्री-विग्रह स्थापित है जिनकी पूजाअर्चा नियमित रूपसे मुरादाबाद के सत्संगी नित्यप्रति सायं-प्रातः श्रद्धा एवं प्रेम पूर्वक करते हैं। श्री सद्गुरु देव योगेश्वर महाप्रभु जी का यह श्री विग्रह आश्विन शुक्ला चतुर्थी को स्थापित हुआ था और इस पवित्र पुण्यस्मृति में वहां के सत्संगीजन प्रति वर्ष त्रिदिवसीय उत्सव मनाया करते हैं। विशाल सत्संग एवं संकीर्तन के साथ-साथ हृदयग्राही एवं शिक्षाप्रद धार्मिक नाटकों का भी आयोजन रहा करता है और आश्विन शुक्ला चतुर्थी के भण्डारे के साथ इस महोत्सव की पूर्ण इति सम्पन्न हुआ करती है। इसी स्थापना समारोह के उपलक्ष में आयोजकों की ओर से भाई श्री शिवनारायण जी के विनम्र आग्रह पर श्री गुरुदेव भगवान ऋषिकेश के अपने एकान्तिक कार्यक्रम में २ अक्टूबर १९७० को रात्रि में लगभग ६॥ बजे पहुंचे। मुरादाबाद स्टेशन पर सत्संगियों का विशाल जनसमूह श्री गुरुदेव भगवान जी के स्वागतार्थ उपस्थित था। तुमुल जयकारों के साथ असंख्य पुष्पमालाओं से श्री गुरुदेव जी को लाद दिया गया और इस प्रकार भावपूर्ण स्वागत के बाद श्री गुरुदेव भगवान हाथी वाले मंदिर पहुंचे। प्रातः कालीन सत्संग में ओ३म् नाम संकीर्तन एवं भजनादि के उपरान्त आरती का कार्यक्रम रहा और सायंकालीन सत्संग में भी प्रथम श्री हरिनाम संकीर्तन एवं भजन होकर आरती के उपरान्त श्री गुरुदेव भगवान का योग सम्बन्धी भाषण हुआ। आश्विन शुक्ला चतुर्थी का कार्यक्रम विशेष रूप से रोचक एवं अत्यन्त शिक्षाप्रद था। पूर्ण उत्साह के साथ विशाल प्रीति भोज (भण्डारा) सम्पन्न कराया गया। उसी रात श्री गुरुदेव जी भावभीनी विदाई के साथ बरेली पैसेंजर द्वारा विदा होकर ता० ५-१०-७० को प्रातः श्री सवाई धाम पहुंच गये।

टूण्डला में श्री सद्गुरु-जन्मोत्सव समारोह

विजय दशमी का पर्व यों तो अत्यंत पवित्रतम हिन्दू संस्कृति का एवं ज्वलन्त स्तम्भ, असत्य पर सत्य की विजय का प्रतीक होने के कारण प्रत्येक हिन्दू मात्र के लिये गौरव का दिवस है, किन्तु हम श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र (मु. पो. सवाई जिला आगरा) के साधकों के लिये यह पवित्र पर्व और भी महत्वपूर्ण है इसलिए कि हमारे आराध्यदेव श्री गुरुदेव भगवान भी अज्ञान तिमिर का अष्टांग योग की प्रखर किरणों द्वारा निवारण करने के लिये इसी पवित्रतम दिवस को हरियाणा राज्य के अन्तर्गत करनाल जनपद के

परम भाग्यशाली ग्राम अलूदुर वासी श्री सद्गुरुधाम में अवतरित हुए थे। पहले श्री सद्गुरु जन्मोत्सव को दिल्ली निवासी सत्संगी (जिनमें आदरणीय भाई मास्टर मणिराम जी एवं प्रोफेसर ऋषिराम जी गुप्ता अग्रगणी रहे) मनाया करते थे किन्तु अपनी उदार हृदयता का परिचय देते हुए १९६३ ई० से उन्होंने यह सौभाग्य सभी सत्संगी भाइयों को प्रदान किया। और इस प्रकार दिल्ली से बाहर सर्व प्रथम श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह १९६३ में सहारनपुर में धूमधाम से मनाया गया। तत्पश्चात् यह पवित्र पर्व बदल-बदल कर विभिन्न स्थानों पर मनाया जा रहा है। इस पवित्र पर्व को प्राप्त करने की लालसा हमारे प्रायः सभी सत्संग मंडलों को रहती है और कई वर्षों पूर्व ही इस पवित्र समारोह के मनाने का निश्चय हो जाता है। इस वर्ष श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह मनाने का सौभाग्य टूण्डला की श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार शाखा को प्राप्त हुआ।

श्री गुरुदेव भगवान की अपार कृपा के फलस्वरूप मुझे उनके अनेकों योग-प्रचार कार्यक्रम तथा श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रत्येक स्थान पर श्रद्धा एवं भक्ति का एक नये प्रकार का स्रोत ही बहता दिखाई दिया है। इस के अनुसार टूण्डला में सत्संगियों का उत्साह, प्रेम और श्रद्धा देखते ही बनती थी। यहां के अधिकांश सत्संगी रेल विभाग के कर्मचारी हैं जिनकी ड्यूटियां विभिन्न-विभिन्न समयों में विभिन्न विभागों में होने के कारण कार्य-व्यस्तता अधिक रहती है। इन सत्संगियों में से अधिकांश को श्री गुरुदेव भगवान की चरणशरण में लाने एवं टूण्डला में श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार को संगठित रूप प्रदान करने के निमित्त कारण आदरणीय भाई शिवराम सागर हैं जो आजकल टूण्डला में उत्तरीय रेलवे के सीनियर इन्स्पेक्टर आफ टिकेट्स हैं। सत्संग का यह पौधा इनके पुरुषार्थ सिंचन से ही बढ़कर एक सघन फलदार वृक्ष बन गया है जिसकी छत्रछाया में श्री विजयकरणसिंह, श्री बी. पी. गोस्वामी, जगपाल सिंह, उदयवीरसिंह, गीतमसिंह, बी.एम.स्वरूप, सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, श्रीपाठकतथा अन्यान्य सभ्रान्त पुरुषार्थी कर्तव्यपरायण एवं गुरु-भक्त परिवार आश्रित हैं और सद्गुरु कृपा-रूपी फलों से सदैव ही लाभान्वित होते रहते हैं।

श्री गुरुदेव भगवान के निवास, प्रवचन एवं सत्संग का आयोजन टूंडला कण्ट्रोल के कण्ट्रोलर ठाकुर विजयकरण सिंहजी की कोठी में किया गया था। कोठी को अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से तोरण-द्वार बिजली की झालरों एवं झण्डियों से सजाया गया था। यहां श्री गुरुदेव भगवान् के निवास की व्यवस्था थी। उसी कमरे में एक ओर आनन्दकन्द योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री राम-लालजी महाराज का मनोहर एवं भव्य सिंहासन था। बराबर का कमरा आगत सत्संगी भाई-बहनों के हेतु खाली रखा गया था। पीछे की ओर पाकशाला का प्रबन्ध था। कोठी के सामने ही विशाल सामियाना

बना हुआ था जिसके नीचे उत्तराभिमुख योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज का मन्दिररूपी सिंहासन सुशोभित था, जहाँ सत्संग की व्यवस्था रखी गई थी। बाहर से आनेवाले सत्संगी भाई-बहनों के लिए आसपास की कोठियों में सामने यूनियन के कार्यालय में तथा निकटवर्ती उत्तरीय रेलवे मिश्र मण्डल में अनेक कमरों की व्यवस्था थी। सारांश यह है कि सब प्रकार से दिनाङ्क ८ अक्टूबर १९७० को श्री गुरुदेव भगवान् को लिवा लाने कार लेकर कुछ सत्संगी सवाई धाम पहुंचे और लगभग सायंकाल चार बजे श्री गुरुदेव भगवान पुष्प सुसज्जित कार द्वारा सत्संग-स्थल पर पहुंचे, जहाँ पूरा सत्संग मण्डल सपरिवार स्वागतार्थ उपस्थित था। गगनभेदी जयकारों से वातावरण गूंज उठा और ज्योंही श्री गुरुदेव भगवान ने उस भाग्यशाली कोठी में पदार्पण किया, पुष्प-मालाओं और साष्टांग प्रणाम निवेदनों की झड़ी ही लग गई। वर्ष भर का दबा हुआ श्रद्धा का स्रोत फूट निकला। उस समय का हर्षोल्लास और सत्संगियों के भावोद्गारों का वर्णन कर सकना कठिन है। स्वागत आरती से श्री सद्गुरु-जन्मोत्सव समारोह के त्रिदिवसीय कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।

सायंकालीन एवं प्रातःकालीन सत्संग सुरुचि पूर्णरूपेण सुसज्जित पण्डाल में सम्पन्न हुआ करता था। पं० इन्दु शर्मा रमलावालों ने अनेक भजन एवं संगीतमय ऐतिहासिक बयानों द्वारा जनता को मन्त्रमुग्ध रखा। झांसी के भाई कृष्णकान्त ओझा ने अपने सिद्धहस्त तबलावादन से सभी गायकों की संगत की। अनेक सत्संगी बहनों के शास्त्रीय संगीतबद्ध भजनों से वातावरण शान्त एवं मन को एकाग्र करनेवाला बना रहा।

श्री गुरुदेव भगवान ने अपने सारगर्भित प्रवचनों में योग-मार्ग की श्रेष्ठता पर बल देते हुए बताया कि साधना के तीन मार्ग हैं—भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग एवं योगमार्ग। और ये तीनों मार्ग ही योग की सार्वभौम परिभाषा एवं परिधि के अन्तर्गत आ जाते हैं। हमारे शास्त्रों में जगह-जगह 'योगी' 'महायोगी' एवं 'योगेश्वर' शब्द का महत्त्वपूर्ण और भगवान के श्री नामों के साथ विशेषण रूप में प्रयोग, योगमार्ग की श्रेष्ठता को सिद्ध करता है। भगवान् श्रीकृष्ण को भी 'योगेश्वर' नाम ही प्यारा था, उन्हें किसी ने 'ज्ञानेश्वर' अथवा 'भक्तेश्वर' कह कर नहीं पुकारा। श्रीमद्भागवत का दृष्टांत देकर श्री गुरुदेवजी ने बताया कि भगवान श्रीकृष्णजी की प्राप्ति की कामना से गोपियों ने अम्बा कात्यायनिव्रत करके भगवति कात्यायनी की आराधना की तो भी उन्हें महायोगिनि' के शब्द से ही सम्बोधित किया—यथा 'कात्यायनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरी' उन्होंने भी भगवती कात्यायनी को 'महाज्ञानिनी' अथवा महाभक्तिमती नहीं कहा। अपितु 'महायोगिनी-अधीश्वरी' ही कहा था। योगमार्ग की सर्व श्रेष्ठता का एक और कारण बताते हुए श्री गुरुदेव भगवान ने बताया कि भक्तिमार्ग में साधक का

आत्मबल क्षीण पड़ने लग जाता है क्योंकि वह देवी देवताओं की दया की भिक्षा पर ही निर्भर रह जाता है और वह दया भी बिना योग मार्ग के अन्तर्गत मन की एकाग्रता उपलब्ध किये बिना अथवा ईश्वर प्रणिधान किये बिना प्राप्त नहीं हो पाती। ज्ञान मार्ग पर अवलम्बित साधक अधिकांशतयः तर्कों और कुतर्कों के जाल में ही उलझा रह जाता है और वह प्रायः यह निश्चित ही नहीं कर पाता कि साधना पथ पर शीघ्र प्रगति प्रदान करने वाला उपाय कौन सा है। किन्तु पवित्र योग मार्ग ही एकमात्र ऐसा साधन है जो तन और मन दोनों स्वस्थ और सबल बना कर साधक को मन की एकाग्रता के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार की ओर तत्परता से अग्रसर करता है। अन्तिम प्रवचन में श्री गुरुदेव भगवान ने एक अत्यन्त सारगर्भित तथा हम सबको समझाते हुये कहा कि यदि साधक अपने साधना-पथ पर विविध रूप से अग्रसर होना चाहता है तो उसे सत्याचरण को अपनाना चाहिये और ईर्षा, द्वेष, परनिन्दा आदि केवल गुणों को निकाल कर मन को अपने इष्ट का अधिष्ठान बनाने के लिये उपयुक्त रूप से निर्मल बना लेना चाहिये। इन दोषों की प्रतिक्रिया समझाते हुए श्री गुरुदेव भगवान ने बताया परनिन्दा और ईर्षा, द्वेष आदि से जिसकी निन्दा की जाती है उसके तो क्लिष्ट संस्कारों का भुगतान होता रहता है किन्तु परनिन्दा करने वाला अपने संस्कार भोग में क्लिष्ट संस्कारों का संचय कर लेता है। अस्तु सभी साधकों इन दोषों से बचने का आदेश श्री गुरुदेव भगवान ने दिया।

जन्मोत्सव का कार्य-क्रम

अत्यन्त प्रतीक्षा के उपरान्त १० अक्टूबर १९७० (आश्विन शुक्ला दशमी सम्वत् २०२७) को विजय दशमी का शुभ दिन आ ही गया। चारों ओर से सत्संगी भाई आ पहुंचे थे। श्री सवाई धाम एत्मादपुर आगरा हाथरस, अलीगढ़ फीरोजाबाद, शिकोहाबाद, इटावा फफूंद, कानपुर, इलाहाबाद, कटरा, बरेली दुर्गापुर, झांसी, दतिया, भोपाल, इन्दौर एवं सहारनपुर आदि अत्यन्त अल्पसंख्यक सैकड़ों की संख्या में सत्संगी भाई बहन इस पवित्र अवसर पर पुण्य लाभ करने उपस्थित हुए थे। टण्डला के सत्संगी भी अत्यन्त विनम्रता, उत्साह और आदरसहित जी खोलकर सबका 'जय श्री गुरुदेव जी' की कह-कहकर हार्दिक स्वागत कर रहे थे। भ्रातृभाव के अनोखे वातावरण का सृजन हो रहा था।

श्री सद्गुरु जन्मोत्सव के उपलक्ष में पूजनादि का विधान पुरन्धर एवं मर्मज्ञ कर्मकाण्डी पण्डितों के विचार विमर्श से निश्चित किया गया था। पांच वेदपाठी ब्राह्मण पूजनादि के लिये आमन्त्रित किये गये थे। आश्विन शुक्ला नवमी को सायंकाल विज्ञ ब्राह्मणों ने पूजन मंडप को शुद्ध करके श्री गणपति पूजन, नवग्रह पूजन, षोडश मातृका पूजन, चौसठ

योगिनि पूजन सप्तर्षि पूजन दश दिगपाल एवं पंचलोकपाल पूजन, वास्तु पूजन, सर्वतोभद्र पूजन एवं कलश स्थापना और हवन हेतु बहुरंगी अक्षरों से अत्यन्त मनोहर वेदियों का निर्माण किया। पूजन मण्डप के चार कोणों में स्थापना हेतु चार कलशों को बहुरंगी चित्रकारी एवं स्वस्तीक चिन्हों से अङ्कित एवं चित्रित कराया गया। यह सब प्रबन्ध ठाकुर विजयकरण सिंह की देख-रेख में हुआ। उधर भाई श्री० पी० मोन्डाली जी विजय दशमी को श्री सद्गुरु जन्मोत्सव के उपलक्ष में प्रीति-भोज के आयोजन की तैयारी में जुटे हुए थे। इन्हीं सब आयोजनों से विजय दशमी को प्रातः ६-६॥ बजे सत्संग-स्थली में चहल-पहल मच गयी।

टूंडला के सत्संगी भाइयों ने श्री सद्गुरु-जन्मोत्सव पूजन के सम्बन्ध में अपार दूर-दर्शिता और औचित्य का आदर्श हम सबके सामने प्रस्तुत करते हुए श्रेष्ठ ध्यानाभ्यासी एवं बड़े भाई होने के नाते ठाकुर दुर्गासिंह जी तोमर सहायक आबकारी आयुक्त को यजमान का पद सौंपा गया। निश्चित कार्य-क्रमानुसार पूजन प्रारम्भ हुआ। उच्च स्वर से विज्ञ ब्राह्मणवृन्द स्वस्ति वाचन करने लगे जिसके उपरान्त सोमवती को अभि-मन्त्रित गंगाजल से परिमार्जित करके एवं यज्ञोपवीत बदलवा कर उन्हें यजमान के आसन पर बैठाया और क्रमशः विधि-विधान पूर्वक श्री गणपति, नवग्रह, षोडश मातृका, चौसठ योगिनी सप्तर्षि, दश दिक्पाल, पंच लोकपाल, वास्तु एवं सर्वतोभद्र आदि का पूजन करके सुनिर्मित वेदिका पर कलश स्थापन कराया।

इधर तो यह पूजन का कार्यक्रम चल रहा था उधर सौ० शशिप्रभा एवं कु० मीनाक्षी मित्तल ने इस पुण्य अवसर के अनु-रूप 'सखि आज कैसो मनोहर घड़ी है, जो दशमी विजय की यहां आ पड़ी है" पल-पल क्षण-क्षण पुलक रहे गुरु जन्म का पर्व कहां है—कोई बता दे" आदि बधाई के शिक्षाप्रद गीत शास्त्रीय रागों में निबद्ध करके सुनाये। बधाई गीतों के अन्तर्गत विजय दशमी का साधारण अर्थों में और विशेषरूपेण हम सत्संगीजनों के लिए महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए यही दर्शाया गया था कि विजय दशमी का पवित्र पर्व के शुभ दिन का हो 'हुई जीत सत् की असत शक्ति हारी' अर्थात् असत् अर्थात् तामस एवं राजस प्रवृत्तियों का दमन करने के लिए 'यही सत् की शक्ति है गुरुवर ने धारी' अर्थात् सत्य स्वरूप गुरुतत्व के प्रतीक श्री गुरुदेव भगवान का प्रादुर्भाव हुआ है। परम कृपानिकेतन श्री गुरुदेव भग-वान ने प्रसन्नतापूर्वक बार-बार आशीर्वाद दिया एवं कुमारी मीनाक्षी मित्तल के तबला-वादन से विशेषरूप से प्रसन्न हुए। घण्टा भर के बधाई गीतों और भजनों (जिनमें बहिन विमलादेवी, मोहिनीदेवी, रामरक्षादेवी, शांतिदेवी, कुमारी सुधा श्रीवास्तव तथा अन्य सभी बहनों ने एक स्वर से सहयोग दिया था) के पश्चात श्री गुरुदेव भगवान ने आनन्दकन्द श्री महाप्रभुजी की आरती सम्पन्न की।

आदरणीय भाई तोमर जी ने तब श्री गुरुदेव भगवान से पूजन हेतु पधारने की प्रार्थना की और आह्वान-मंत्रोच्चारण के मध्य श्री गुरुदेव भगवान को स्नानासन पर विराजमान कराया और भाई तोमर जी ने सादर पाद्य अर्घ्य और आचमन समर्पण करके मर्मज्ञ ब्राह्मणों द्वारा पुरुषसूक्त के मंत्रोच्चारण के साथ साथ पंचामृत द्वारा श्री। गुरुदेव भगवान का अभिषेक किया। सत्संगी भाई बहनों द्वारा पंचामृत स्नान-समर्पण की व्यवस्था बहुत ही सुन्दर और सुव्यवस्थित रही। सभी पंक्तिबद्ध खड़े थे। शुद्ध जल से हाथ धोकर पंचामृत लेकर समर्पण करने की व्यवस्था थी। पंक्तिबद्ध गुरु भाई-बहनों द्वारा पञ्चामृत समर्पण कार्य्य का श्रीगणेश टूण्डला मण्डल की ओर से भाई शिवराम जी सागर ने आरम्भ किया। और अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उन्होंने पञ्चामृत से श्री गुरुदेव भगवान को स्नान कराया। फिर एक-एक करके शान्तिपूर्वक सभी सत्संगी भाई-बहनों ने पञ्चामृत समर्पण किया और अन्त में भाई दुर्गासिंह जी तोमर ने श्री गुरुदेव भगवान को शुद्धोदक से स्नान कराया। श्री गुरुदेव जी नवीन वस्त्र धारण करके पूजन मण्डप में अपने आसन पर विराजमान हुए और विधिवत् पूजनोपरान्त हवन यज्ञ सम्पन्न कराया। पूर्णाहुति के पश्चात् आचार्य ब्राह्मणों ने श्री गुरुदेव भगवान को वैदिक आरती उतारी और श्री गुरुदेव भगवान पुनः सत्संग-मण्डप में सिंहासन पर विराजमान हुए। मंगल प्रतीक वेण्ड बाजा बजने लगा और उपस्थित साधक समुदाय ने मिलकर पञ्चप्रदीपी सुसज्जित बहुरंगी आरती से श्री गुरुदेव भगवान की सामूहिक आरती उतारी।

ब्रह्म-भोज एवं अभिनन्दन

उधर तो टूण्डला-मण्डल की सत्संगिनों ने ब्रह्मभोज का आयोजन प्रारम्भ किया इधर सत्संग-मण्डप में 'सिद्धयोग' के सह सम्पादक श्री देवीप्रसाद जी 'दिव्य' ने अभिनन्दन का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम श्री 'दिव्य'जी ने स्वरचित एक कविता का पाठ किया जो 'सिद्धयोग' के गतांक में प्रकाशित की जा चुकी है। कविता अत्यंत भावपूर्ण थी। प्रथम भाग में रचयिता ने प्रश्न किया है कि जिस सद्गुरु तत्व को हम अनादि अजन्मा आदि मानते हैं उस सत्ता का जन्म और जन्मोत्सव कैसा ? कविता के उत्तरार्द्ध में इसी महत्त्वपूर्ण समस्या का समाधान किया गया है।

तदनन्तर सवाई निवासी गुरु चरण-सुरागी कवि श्री लक्ष्मीनारायण कोशल ने इसी शुभ अवसर के उपयुक्त अपनी एक नवीन रचना प्रस्तुत की तथा श्री राजपति दुबे बालेन्दु ने अपनी भावपूर्ण रचना गाकर सुनाई।

बहिन सुधा श्री वास्तव जो कई दिनों से ज्वर ग्रस्त थीं श्री गुरु-कृपा औषध से ही स्वस्थ एवं सबल हो पाई थीं उन्होंने भी दो भजन अत्यंत भावपूर्ण और मनोहर ढंग से गाये। फिर व्यक्तिगत तिलक का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया और सभी ने शान्तिपूर्वक

श्री गुरुदेव भगवान का पूजन और तिलक

। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मन्त्री श्री जयनप्रसाद जी रावत भी आये और श्री गुरुदेव भगवान का पूजन एवं तिलक किया। प्रीति-भोज का कार्य-क्रम भी प्रारम्भ हो गया था जो प्रायः दोपहर १ बजे से ४ बजे तक अनवरत चलता ही रहा। टूण्डला मण्डल के सदस्यों का उत्साह दर्शनीय था जिन्होंने सेवा भाव का आदर्श स्थापित कर दिया था।

रात्रि कालीन सत्संग में बहिन सुधा श्रीवास्तव के भक्ति एवं भावपूर्ण भजनों के अतिरिक्त पं. इन्दु शर्मा रसालावालों ने संगीत मय ऐतिहासिक कथानक प्रस्तुत किये और दुर्गापुर से आये हुए भाई रमेशचन्द्रजी ने अपने टेप रिकार्डर से श्री गुरुदेव भगवान का एक ओजस्वी भाषण भी सुनवाया।

दिनांक ११ अक्टूबर १९७० को विदाई का दिन था। प्रातःकालीन सत्संग में भाई रमेशचन्द्रजी ने अपने ध्वनिमेलन यंत्र टेप रिकार्डर पर स्मृति रूप में बहिन सुधा श्रीवास्तव के दो भजन सो. शशिप्रभा का भजन कु. मीनाक्षी मित्तल और भाई कृष्णकान्त जी भा का तबलावादन रिकार्ड किया।

दोपहर भोजनोपरान्त विदाई का समय आयया। कौन हृदय से श्री गुरुदेव भगवान को विदा करना चाहेगा? किन्तु श्री भगवान श्रीकृष्ण के वृन्दावन से मथुरा आने के दृश्य की पुनरावृत्ति कराते हुए बोझिल मन भीगी पलकों और गद्गद् कण्ठों से सभी ने श्री गुरुदेव भगवान को भावभीनी विदाई दी और श्री गुरुदेव भगवान कार द्वारा ही लगभग सायं ३ बजे सवांई धाम पहुंच गये।

अगले दिन दिनांक १२ १०-७० को पुनः टूण्डला निवासियों को श्री गुरुदेव भगवान के क्षणिक दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ जब श्री गुरुदेव भगवान ने सायंकाल ४ बजे कालका मेल से चण्डीगढ़ के लिये प्रस्थान किया।

नोट:— श्री कौशिक जी की रचना जो उन्होंने सुनाई थी हम आगामी अङ्क में प्रकाशित करेंगे।

—सं० सम्पादक

श्री गुरुदेव जी का योग-प्रचार कार्यक्रम

श्री गुरुदेवजी प्रति वर्ष दीपावली के उपरांत आश्रम पर लगभग १० दिन तक निवास किया करते थे किन्तु इस वर्ष कार्यक्रमों की व्यस्तता के कारण दीपावली के १-२ दिन पश्चात् ही ४ नवम्बर को अपने योग-प्रचार कार्यक्रमों पर चल पड़ेंगे जो इस प्रकार हैं :—

४-११-७० को	आगरा कैण्ट से रात्रि को बम्बई-पठान कोट एक्सप्रेस में सवार होकर नई दिल्ली होकर समालखा मण्डी के लिए प्रस्थान ।
५-११-७० को	प्रातः समालखा में स्वागत समारोह व गोशाला समारोह में सम्मिलित
६-११-७० से १३-११-७० तक	समालखा मण्डी (करनाल) में योग-प्रचार कार्यक्रम । पता-द्वारा—वैश्य अग्रवाल नई धर्मशाला समालखा मण्डी (करनाल)
१४-११-७० को	बुलन्दशहर में शाम को लगभग ४ बजे स्वागत समारोह
१४-११-७० से २३-११-७० तक	योग-प्रचार कार्यक्रम पता-द्वारा—श्री दुष्यन्तसिंह सीसोदिया जेलर, जिला कारागार, बुलन्दशहर
२४-११-७० को	बुलन्दशहर में विदाई कार्यक्रम व नानौता (सहारनपुर) में शाम को शुभागमन
२४-११-७० से २८-११-७० तक	नानौता (सहारनपुर) में योग-प्रचार कार्यक्रम
२९-११-७० व ३०-११-७०	अम्बाला शहर में कार्यक्रम पता:— श्री बोधराज दत्त मेहता एडवोकेट म० नं० ७२०८ वार्ड नं० ४ बाजार बख्शीराम, अम्बाला शहर

१-१२-७० को

अम्बाला कैण्टसे बम्बई पठानकोट एक्स-प्रेस से शाम को लगभग ३ बजे नई दिल्ली मथुरा आगरा कैन्ट होकर दतिया के लिये प्रस्थान ।

दतिया में स्वागत समारोह

२-१२-७० को
२-१२-७० से
७-१२-७० तक

दतिया (म. प्र.) में योग प्रचार कार्यक्रम
पता:— द्वारा श्री शारदाशरण सक्सेना
एडवोकेट
दतिया (म. प्र.)
स्थान श्री चन्द्रवाटिका, सरकिट हाउस के पीछे स्टेशनरोड दतिया

झांसी में स्वागत-समारोह

८-१२-७०

८-१२-७० से
१३-१२-७० तक

योग प्रचार कार्यक्रम
पता:— द्वारा श्री ईश्वरीप्रसाद खत्री
अटलभवन नानकगंज सीपरी बाजार झांसी

१४-१२-७० को

१५-१२-७०

झांसी से रात्रि को बम्बई-पठानकोट एक्सप्रेस से सवार होकर आगरा मथुरा होते हुए नई दिल्ली पहुचेंगे ।

नोट:— यह कार्यक्रम प्राय: निश्चित ही है किन्तु किन्हीं विशेष परिस्थितियोंवश इसमें श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। इसका अगला कार्यक्रम आगामी अङ्क में प्रकाशित होगा ।

—व्यवस्थापक

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

आवश्यक-सूचना

समालखा मंडी (करनाल) में

योग-प्रचार-समारोह

सभी सत्संगी भाई-बहिनों को सूचना देते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है कि हमारी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके श्री सद्गुरुदेव अनन्त कोटि योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने परम करुणापूर्वक समालखा मण्डी के लिये अपना योग-प्रचार कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। श्री महाराजजी अपने निश्चित किये कार्यक्रमानुसार ४-११-७० को आगरा कट से रात्रि को बम्बई-पठानकोट एक्सप्रेस से सवार होकर ५-११-७० को नई दिल्ली होते हुए प्रातः समालखा मण्डी पहुँचेंगे। श्री महाराजजी का समालखा मंडी में योग-प्रचार कार्यक्रम ५-११-७० से १३-११-७० तक अनवरत चलेगा। अतः भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासी सत्संगी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुग्रहीत करें एवं सत्संग का लाभ उठायें।

श्री महाराजजी का निवास
एवं
योग-प्रचार कार्यक्रम
वैश्य अग्रवाल नई धर्मशाला
समालखा मण्डी (करनाल)

निवेदक :
लाला दुलीचन्द गोयल व
ओमप्रकाश इलवाई
श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार सभा
समालखा मण्डी (करनाल)

कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज-आगरा-१

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

आवश्यक-सूचना

बुलन्दशहर में

योग-प्रचार-समारोह

सभी सत्संगी भाई-बहिनों को सूचना देते हुए मुझे हर्ष हो रहा है कि हमारी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके श्री सद्गुरुदेव अनन्त कोटि योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने परम करुणापूर्वक बुलन्दशहर के लिये अपना योग-प्रचार कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। श्री महाराजजी अपने निश्चित किये कार्यक्रमानुसार १४-११-७० को समालखा मण्डी (करनाल) से अपना योग-प्रचार कार्यक्रम पूर्ण करके बुलन्दशहर शाम को लगभग ४ बजे पहुँच जायेंगे। श्री महाराज जी का बुलन्दशहर में योग-प्रचार कार्यक्रम १४-११-७० से २३-११-७० तक अनवरत चलेगा। अतः भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासी सत्संगी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुग्रहीत करें एवं सत्संग का लाभ उठायें।

श्री महाराजजी का निवास
एवं
योग-प्रचार कार्यक्रम
कोठी बेलर, जिला कारागार
बुलन्दशहर

निवेदक :
दुष्यन्तसिंह मीसौदिया बेलर
श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार केन्द्र
जिला कारागार, बुलन्दशहर
बुलन्दशहर

कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज-आगरा-१

❀ श्री रामलाल प्रभवे नमः ❀

आवश्यक-सूचना

नानौता (सहारनपुर) में

योग-प्रचार-समारोह

सभी सत्संगी भाई-बहिनों को सूचना देते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है कि हमारी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके श्री सद्गुरुदेव अनन्त कोटि योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने परम करुणापूर्वक नानौता के लिये अपना योग-प्रचार कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। श्री महाराजजी अपने निश्चित किये कार्यक्रमानुसार २४-११-७० की शाम को नानौता पधारेंगे। श्री महाराजजी का नानौता में योग-प्रचार कार्यक्रम २४-११-७० से २८-११-७० तक अनवरत चलेगा। अतः भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासी सत्संगी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुग्रहीत करें एवं सत्संग का लाभ उठायें।

नोट :—यह नानौता का कार्यक्रम प्रायः निश्चित ही है। किन्तु किसी विशेष परिस्थिति वश श्री गुरुदेवजी द्वारा परिवर्तित भी किया जा सकता है।

श्री महाराजजी का निवास
एवं
योग-प्रचार कार्यक्रम
ब्रजमोहन वाशिष्ठ
श्री सिद्ध गुफा प्रा० पाठशाला
नानौता (सहारनपुर)

निवेदक :
अमरसिंह मन्त्री
श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार सभा
नानौता (सहारनपुर)

कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज-आगरा-१

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्ध गुफा–सवाई

का

दतिया नगर में शुभागमन

सभी सत्संगी भाई-बहिनों को सूचना देते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है कि हमारी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके श्री सद्गुरुदेव अनन्त कोटि योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने परम करुणापूर्वक दतिया के लिये अपना योग-प्रचार कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। श्री महाराजजी अपने निश्चित किये कार्यक्रमानुसार दतिया में प्रातः २–१२–७० को अमृतसर एक्सप्रेस से पधार रहे हैं। श्री महाराजजी का दतिया में योग-प्रचार कार्यक्रम २-१२-७० से ७-१२-७० तक चलेगा।

अतः भिन्न-भिन्न प्रान्तों के निवासी सत्संगी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुग्रहीत करें एवं सत्संग का लाभ उठायें।

पत्र व्यवहार का पता :—

द्वारा–श्री शारदाशरण सक्सेना
एडवोकेट
दतिया (म० प्र०)

निवेदक :

श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार मण्डल
श्री चन्द्रवाटिका, स्टेशन रोड,
दतिया (म० प्र०)

कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज-आगरा-१

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

आवश्यक-सूचना

झाँसी में

योग-प्रचार-समारोह

सभी सत्संगी भाई-बहिनों को सूचना देते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है कि हमारी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके श्री सद्गुरुदेव अनन्त कोटि योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने परम करुणापूर्वक झाँसी के लिये अपना योग-प्रचार कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। श्री महाराजजी अपने निश्चित किये कार्यक्रमानुसार दतिया से ८-१२-७० को झाँसी पहुँचेंगे। श्री महाराजजी का झाँसी में योग-प्रचार कार्यक्रम ८-१२-७० से १३-१२-७० तक अनवरत चलेगा। अतः भिन्न भिन्न ग्रान्तों के निवासी सत्संगी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुग्रहीत करें एवं सत्संग का लाभ उठायें।

श्री महाराजजी का निवास
एवं
योग-प्रचार कार्यक्रम
अटल भवन, नानकगंज
सीपरी बाजार (झाँसी)

निवेदक :
ईश्वरीप्रसाद खट्टर
अटल निवास, नानकगंज
सीपरी बाजार (झाँसी)

कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, राजगंज-आगरा-१

लेखकों और कवियों से

१—'सिद्धयोग' के लेखकों और कवियों से निवेदन है कि वे प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेखों एवं कविताओं को स्पष्ट व शुद्ध लिपि में कागज के एक ही ओर लिखकर भेजने की कृपा किया करें। पेन्सिल से अथवा दोनों ओर लिखे लेखों के प्रकाशित करने में असुविधा और विलम्ब दोनों का ही होना सम्भव रहता है।

२—अनेक बन्धु कविताओं के स्थान पर अपने भजन, संगीत आदि भेजकर उनके प्रकाशन का आग्रह करते हैं। प्राप्त हुए भजन और संगीत आदि को 'सिद्धयोग' में यदा-कदा स्थान भी दिया जाता रहा है लेकिन हम अपने नवोदित काव्य-रचना करने वाले भाई-बहनों से यह विशेष रूप से निवेदन करेंगे कि वे भजन, संगीत आदि की रचनाओं को समारोहों में गाने के लिए सुरक्षित रखकर 'सिद्धयोग' में केवल काव्य गुण सम्पन्न रचना ही प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा करें। भजनों को हम उसी दशा में छापेंगे जब वे छन्द शास्त्र के नियमों के अनुसार होंगे।

३—प्रत्येक लेख अथवा रचना को लेखक के मूल-भाव की रक्षा करते हुए हम उसे यथावत् प्रकाशित करने का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। फिर भी स्थान की सुविधा, भाषा के परिमार्जन और शैली आदि की दृष्टि से लेखों में आवश्यक परिवर्धन, परिवर्तन और संशोधन आदि करने का कर्त्तव्य-पालन सम्पादकीय विभाग को करना पड़ता है। अपने इस कर्त्तव्य-पालन के लिए भी हम लेखक बन्धुओं से क्षमा चाहेंगे।

४—अप्रकाशित लेख डाक-शुल्क प्राप्त होने पर लौटाये जा सकते हैं।

—सं० सम्पादक

Sidha-yog Regd. NO. L. 1002

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्रीचन्द्रमोहनजी महाराज

पवित्र-चिन्तन

संसार में पवित्र चिन्तन का एक स्रोत बहा दो। मन-ही-मन कहो—संसार में सभी सुखी हों, सभी शान्ति लाभ करें, सभी आनन्द पायें। इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चहुं ओर पवित्र चिन्तन की धारा बहा दो। ऐसा जितना करोगे, उतना ही तुम अपने को अच्छा अनुभव करने लगोगे। बाद में देखोगे, 'दूसरे सब लोग स्वस्थ हों,' यह चिन्तन ही स्वास्थ्य-लाभ का सहज उपाय है। 'दूसरे लोग सुखी हों,' ऐसी भावना ही अपने को सुखी करने का सहज उपाय है इसके बाद जो लोग ईश्वर पर विश्वास करते हैं, वे ईश्वर के निकट प्रार्थना करें—अर्थ स्वास्थ्य अथवा स्वर्ग के लिए नहीं, वरन् हृदय में ज्ञान और सत्य तत्त्व के उन्मेष के लिए। इसको छोड़ बाकी सब प्रार्थनायें स्वार्थ से भरी हैं। इसके बाद भावना करनी होगी—'मेरा शरीर वज्रवत् दृढ़ सबल और स्वस्थ है। यह देह ही मेरी मुक्ति में एकमात्र सहायक है। इसी की सहायता से मैं यह जीवन-समुद्र पार कर लूंगा।' जो दुर्बल है, वह कभी मुक्ति नहीं पा सकता। समस्त दुर्बलताओं का त्याग करो। देह से कहो, तुम खूब बलिष्ठ हो।' मन से कहो, 'तुम अनन्त शक्तिधर हो।' और स्वयं पर प्रबल विश्वास और भरोसा रखो।

—स्वामी विवेकानन्द

मुद्रक-देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, राजगंज-आगरा-२